ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 29 जून 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 29 जून 2025 से 05 जुलाई 2025

आषाढ़ शु. 04 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 26, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

डी.ए.वी. कोटा में नवनिर्मित महात्मा आनन्द स्वामी ब्लाक का हुआ लोकार्पण

डीएवी कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति, नई दिल्ली एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के प्रधान पद्मश्री आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी द्वारा डीएवी पब्लिक स्कूल, कोटा के नवनिर्मित भवन महात्मा आनंद स्वामी ब्लॉक का लोकार्पण संपन्न हुआ।

उद्घाटन से पूर्व पद्मश्री से सम्मानित आर्य रत्न डॉ. पूनम सूरी जी का परम्परागत स्वागत किया गया।

उद्घाटन के उपरान्त प्रधान जी ने पर्यावरणीय संरक्षण हेतु औशधीय पौधे गुग्गुल का रोपण भी किया।

डॉ. पूनम सूरी ने उद्घाटन के अवसर पर कहा कि यह नवनिर्मित

महात्मा आनंद स्वामी ब्लॉक शिक्षा की दिशा में एक सशक्त कदम सिद्ध होगा। उन्होंने डीएवी कोटा विद्यालय परिवार को इस सुंदर प्रयास के लिए बधाई दी और कहा उद्घाटन समारोह ने न केवल एक नवीन भवन का आरंभ किया, बल्कि कोटा डीएवी की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि को भी और अधिक उज्ज्वल किया है। यह भवन निश्चित रूप से विद्यार्थियों एवं संपूर्ण समाज के लिए प्रेरणा का केंद्र बनेगा।

प्राचार्या श्रीमती पल्लवी अरोड़ा ने अपने संबोधन में इस प्रकल्प की परिकल्पना से लेकर निर्माण तक की यात्रा को साझा किया। उन्होंने डॉ. पूनम सूरी जी, पूर्व प्राचार्यों, शिक्षकों, अभिभावकों और छात्रों के सहयोग का आभार प्रकट किया। मुख्य अतिथि द्वारा विद्यालय के न्यूजलेटर का भी विमोचन किया।

कार्यक्रम में निदेशक श्री वी.के. चोपड़ा के अतिरिक्त प्रबंधक, उपाध्यक्ष तथा अन्य एल.एम.सी. सदस्य, समस्त प्राचार्यगण उपस्थित रहे।

डी.ए.वी. देहरा गोपीपुर ने मनाया डी.ए.वी. स्थापना दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, देहरा (कांगड़ा) हिमाचल प्रदेश में डीएवी स्थापना दिवस समारोह का आयोजन बहुत ही धूम धाम से किया गया। सभी छात्रों

और अध्यापकों ने बड़े उत्साह तथा श्रद्धा के साथ इस आयोजन में भाग लिया।

समारोह के अंतर्गत भजन गायन, वैदिक मंत्र पाठ, शोभा यात्रा, नारा लेखन, पोस्टर मेकिंग आदि अनेक गतिविधियों का आयोजन किया गया।

प्रधानाचार्य श्री विश्वास शर्मा ने इस अवसर पर सभी छात्रों तथा कर्मचारियों को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को अपने जीवन में उतारने के लिए प्रेरित किया तथा वैदिक अनुष्ठानों के वैज्ञानिक महत्व को भी उजागर किया। उन्होंने छात्रों को स्वामी दयानंद के आदर्शों को अपने दैनिक जीवन में अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

प्राचार्य महोदय ने डीएवी आन्दोलन के अतीत और वर्तमान पर प्रकाश डाला और छात्र–छात्राओं को संदेश दिया कि आर्यसमाज के मंत्र–**'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** को अपना लक्ष्य बनाएँ जिससे संसार का कल्याण हो सके।

डी.ए.वी. नरवाणा (योल) हिमाचल प्रदेश में विश्व पर्यावरण दिवस

आई.बी. डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल नरवाना (योल) में पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य पर पौधारोपण, चित्रकला एवं प्रश्नोतरी का आयोजन किया गया। इस आयोजन में उप–विभागीय अधिकारी (SDO) श्री वरुण गुप्ता, धर्मशाला की

मौजूदगी रही।

उन्होंने पर्यावरण दिवस के महत्त्व के बारे में जानकारी देते हुए छात्रों के साथ एक संवादात्मक सत्र का आयोजन किया।

माननीय अतिथि ने चित्रकला प्रतियोगिता और इंटरहॉउस प्रश्नोतरी प्रतियोगिता में उपाधि प्राप्त छात्रों को सम्मानित किया। श्री गुप्ता ने विद्यालय की प्राचार्या महोदया, स्टाफ व बच्चों के साथ मिलकर वृक्षारोपण भी किया।

इस उपलक्ष्य पर बच्चों ने सुन्दर छायाचित्रों को मनमोहक रंगों व उचित संदेश से आच्छादित किया। बच्चों ने अपने चित्रों के माध्यम से पर्यावरण को संरक्षित के अनेकों संदेश दिए। प्राचार्या श्रीमती लता ठाकुर ने मुख्य अतिथि के विद्यालय में आगमन एवं छात्रों को प्रेरित करने के लिए उनका अभिनन्दन व स्वागत किया।

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 29 जून 2025 से 05 जुलाई 2025

यज्ञ रचा, दान कर

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

न त्वां शतं चन ह्रुतो, राधो दित्सन्तमामिनन्।
यत् पुनानो मखस्यसे।।

ऋग् ९.६१.२७

ऋषिः **अमहीयुः आङ्गिरसः।** देवता **पवमानः सोमः।** छन्दः **गायत्री।**

● (हे आत्मन्!), (**राधः**) धन को, (**दित्सन्तं**) दान करना चाहते हुए, (**त्वा**) तुझे, (**शतं चन**) सौ भी, (**ह्रुतः**) कुटिल वृत्तियाँ व कुटिल जन, (**अ आमिनन्**) हिंसित अर्थात् मार्ग–च्युत न कर पायें, (**यत्**) जब, (**पुनानः**) (स्वयं को) पवित्र करता हुआ। (तू), (**मखस्यसे**) यज्ञ रचाता है।

● हे पवमान सोम! हे स्वयं को तथा मन, बुद्धि आदि को पवित्र करने वाले सात्विक–वृत्ति जीवात्मन्! जब तू परोपकार का यज्ञ रचाता है और अपना धन किन्हीं सत्पात्र व्यक्तियों को या संस्थाओं को दान देने का संकल्प करता है, तब बहुत–सी कुटिल स्वार्थ–वृत्तियाँ और बहुत–से कुटिल मनुष्य तेरे उस दान–व्रत की हिंसा करना चाहते हैं और तुझे दान के मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करते हैं। स्वार्थ–वृत्ति कहती है कि सहस्त्र, दश सहस्त्र, पचास सहस्त्र, लाख, दो लाख रूपया तुम अन्यों को दान कर कर रहें हो, तो क्या स्वयं भूखे मरना चाहते हो? देखो, सब अपनी सम्पति बढ़ा रहे हैं; जो सहस्त्रपति है वह लक्षपति बन रहा है, जो लक्षपति है वह करोड़पति बन रहा है। उनके पास कई–कई कोठियाँ हैं, मोटरकारें हैं, सेवक हैं। क्या दान का ठेका तुमने ही लिया है? क्या तुम्हारे ही भाग्य में यह लिखा है कि स्वयं तो मोटा–झोटा पहनो, रूखा–सूखा खाओ, झोपड़ी जैसे मकानों में रहो और दूसरों पर धन लुटाओ। पहले अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति सुधारो, फिर अन्यों की सुध लेना। हे आत्मन्! तू उस स्वार्थ–वाणी को मत सुन। तुझे दान करने के लिए उद्यत देख कई स्वार्थी परिचित मनुष्य भी आकर मिथ्या ही आलोचना करते हैं कि तुम जिस संस्था को दान करने जा रहे हो, उसकी आन्तरिक अवस्था को भी जानते हो? उनमें सब खाऊ–पिऊ बैठे हैं, तुम्हारा दिया हुआ दान उन्हीं के पेट में जाएगा। हे आत्मन्! तू उन उन स्वार्थी जनों के भी कुटिल परामर्श पर ध्यान मत दे। सौ प्रकार की स्वार्थ–भावनाएँ और सौ स्वार्थी–जन भी तुझे तेरे दान के संकल्प से विचलित न कर सकें।

हे मेरे आत्मन्! वेद–शास्त्रों की वाणी सुन, जो तुझे दान के लिए प्रेरित कर रही है। तू अपनी कमाई में से प्रतिदिन या प्रतिमास कुछ निश्चित प्रतिशत दान–खाते में डाल और उसे लोक–कल्याण में व्यय कर। दान से दक्षिणा पानेवाले का तो हित होता ही है, उससे भी अधिक हित और मंगल दाता का होता है, यह वैदिक संस्कृति की भावना है। इसके विपरीत, "अकेला भोग करनेवाला मनुष्य पाप का ही भोग करता है"।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

योगी और अयोगी, वैरागी और रागी में अन्तर बातकर स्वामी जी ने कहा कि व्यक्ति उपासक अथवा योगी बाहरी चिह्नों से नहीं बनता। संन्यास तो सर्व–त्याग को कहते हैं। प्रसंग है कि तत्त्वज्ञान के दूसरे साधन 'वैराग्य' का।

अपना अनुभव बताते हुए स्वामी जी ने साधक जब सारी ज़ंजीरें तोड़कर निर्जन वन में जा बैठता है तब इसे भगवान् के अतिरिक्त कोई सहारा नज़र नही आता। संसारी पदार्थों की असारता को अनुभव कर वैराग्य के सागर में लगता है।

भागवत् स्कन्ध।। पंचदशी और भगवान मनु के विचार रखकर स्वामी जी ने बताया कि ममता को छोड़, द्वन्द्वों से छूटकर साधक ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

तत्त्वज्ञान का तीसरा साधन है षट् सम्पत्ति – शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। स्वामी जी ने इन छः पर एक–एक करके चर्चा आरम्भ की।

शम क्या है ? दम क्या है ? उपरति क्या है? तितिक्षा क्या है ? इसके अर्थ बताए और इसके स्वरूप स्पष्ट किए। अपने अन्तःकरण को पाप की ओर न जाने देना है – **शम**। इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकना **'दम'** है। अपने कर्तव्य का पालन करना **'उपरति'** है। द्वन्दों, कठिनाईयों को सहना, आपत्तियों से न धबराना, विघ्नों को परे हरान्त **तितिक्षा** है।

इनका प्रमाण, शंकर, भगवद्गीता के प्रसंगों से दिया।

..... अब आगे

श्रद्धा क्या है ?

श्रद्धा कहते हैं उस अटल विश्वास को जो पूरे अनुसन्धान के पश्चात् किसी सत्य तत्त्व पर किया जाता है। ऋषि दयानन्द ने इसकी यह व्याख्या की है–**"जो वेदादि सत्य–शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान्, सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना है, वह श्रद्धा कहाती है।"**

श्रद्धा की नैया बिना, इस मार्ग की नदियाँ पार नहीं की जा सकतीं। वेद भगवान् तथा तदनुकूल सत्–शास्त्र और वेद के विद्वान् गुरुओं के वचनों पर पूरी श्रद्धा होना आवश्यक है। एक बार जब श्रद्धा करके चल पड़े तो फिर तर्क–वितर्क का कोई स्थान शेष नहीं रहता। श्रद्धा ही के बल पर फिर तो आगे बढ़ना होता है। श्रद्धा के नाम पर अनाचार भी बहुत हुए हैं। कहा यह जाने लगा कि "श्रद्धा और भावना से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।" इन शब्दों में तो निस्सन्देह कोई आपत्ति नहीं, परन्तु देखना यह चाहिए कि श्रद्धा और भावना कहाँ करनी है ? श्रद्धा शब्द का तो भाव ही यह है– **सत्य पर विश्वास।** भावना का भाव यह है कि जिस वस्तु में जो गुण है, उसमें उसी गुण के अनुसार भावना करना। जड़ में यदि चेतन की भावना कर ली जाएगी तो वह जड़ प्रलय काल तक भी चेतन न हो सकेगा। काग में हंस की भावना करके सामने दूध रख दिया जाए तो दूध में काग की चोंच पड़ने से दूध तथा जल पृथक्–पृथक् नहीं हो सकेगा। इस प्रकार असत्य पर सत्य का विश्वास कर लेने से श्रद्धा नहीं होगी। कोरा वितण्डावाद भी किसी को श्रद्धा का माधुर्य चखने नहीं देगा। श्रद्धा करने से पूर्व भली प्रकार जाँच कर लो कि किस पर, क्यों श्रद्धा की जा रही है ? तत्पश्चात् उस श्रद्धा से हृदय, मन और मस्तिष्क भरपूर कर लो। अब श्रद्धा ही से बेड़ा पार होगा। ऋग्वेद में तो एक सूक्त ही श्रद्धा की महिमा का है। उसका अन्तिम मन्त्र यह है :

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।

10.151.5

'हम प्रातःकाल श्रद्धा का आवाहन करते हैं। मध्यन्दिन और सूर्य के अस्त–समय में भी श्रद्धा का आवाहन करते हैं। हे श्रद्धे ! हम सबको श्रद्धा से

युक्त करो।'

इस सूक्त के पहले दो मन्त्र ये हैं :

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।
1।।

'श्रद्धा से अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। श्रद्धा से (हवि) हवन किया जाता है। ऐश्वर्य के शिखर (ऐश्वर्य का कारण) पर श्रद्धा को प्रशंसा के साथ मानते हैं।'

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृषि।।
2।।

'श्रद्धे ! दान देनेवाले का प्रिय कर। श्रद्धे ! देने की इच्छा करने वालों का प्रिय कर। (श्रद्धा के साथ) भोग और यज्ञ (त्याग) करनेवाले का प्रिय कर। यह मेरा कार्य (उदित) कर, पूरा कर।'

वेद का आदेश यह है कि श्रद्धा से किया हुआ हर काम सफल होता है। इसी सूक्त का चौथा मन्त्र आत्म–दर्शन के मार्ग पर चलनेवालों के लिए विशेष ध्यान देने योग्य है :

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।।
4।।

'दिव्य यजमान श्रद्धा को प्राप्त होते हैं। प्राणायाम करनेवाले (योगी) श्रद्धा से उपासना करते हैं। हृदय के उच्च भाव से श्रद्धा प्राप्त होती है। श्रद्धा से वसु (दिव्य धन) प्राप्त होता है।'

इतनी महिमा वेद ने श्रद्धा की गान की है।

समाधान क्या है ?

कोई भी शंका जब तक बनी है, जब तक सारे संशय निवृत्त नहीं हो जाते, चित्त तब तक चिन्तन में लगा रहता है और यह विचित्र चित्रकार अन्दर बैठा ही नाना चित्र खींच–खींचकर मन को उन्हीं चित्रों में लगाए रखता है। संशय जब मिट जाते हैं **(छिद्यन्ते सर्व संशयाः)** तथा कोई शंका शेष नहीं रहती, तब चित्त का समाधान हो जाता है; इसकी तड़प समाप्त हो जाती है। भगवान् शंकराचार्य जी ने भी और महर्षि दयानन्द ने भी समाधान का प्रयोजन यह बतलाया है – **चित्तैकाग्रता** (चित्त की एकाग्रता)। और यह चित्त तभी एकाग्र होगा जब सारी शंकाओं का समाधान हो जाएगा और हमारे सारे संशय निवृत्त हो जाएँगे। बार–बार संशय उठते रहना और शंकाओं ही के सागर में गोते खाते रहना, चित्त को एकाग्र नहीं होने देते। ये संशय तथा शंकाएँ नाना प्रकार की कामनाओं ही से सामने आती हैं। इस प्रसंग में गीता के तीसरे अध्याय के अन्तिम आठ श्लोक बड़े तत्त्व के हैं। श्री कृष्ण भगवान् अपने प्रिय भक्त अर्जुन को बतला रहे थे कि कौन लोग इन्द्रियों के पीछे नहीं भागते और कर्मों में आसक्त नहीं होते। कर्मवीर अर्जुन ने तब प्रश्न किया :

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।
3.36।।

'फिर यह पुरुष बलात्कार से लगाए हुए के सदृश, न चाहता हुआ भी किससे प्रेरित हुआ पाप का आचरण करता है ?'

बड़े महत्त्व का यह प्रश्न है और आज भी प्रायः यह प्रश्न कितने साधकों के सामने आ जाता है। इसका जो उत्तर कृष्ण भगवान् ने दिया है, वह सारे संशय मिटाकर चित्त का समाधान करनेवाला है। सात श्लोकों में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि :

"हे अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यही महा–अशन अर्थात् अग्नि के सदृश, भोगों से न तृप्त होनेवाला और बड़ा पापी है। इस विषय में इसको ही तू वैरी जान।

जैसे धुएँ से अग्नि और मल से दर्पण ढक जाता है तथा जैसे जेर से गर्भ ढका हुआ है, वैसे ही इस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है।

इस अग्नि–सदृश, न पूर्ण होनेवाले कामरूप, ज्ञानियों के नित्य वैरी से ज्ञान ढका हुआ है।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसके वास स्थान कहे जाते हैं और यह काम इन्हीं द्वारा ज्ञान–हरण करके जीवात्मा को मोहित करता है।

इसलिए हे अर्जुन ! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाश करनेवाले इस काम पापी को निश्चयपूर्वक मार।

यदि तू समझे कि इन्द्रियों को रोककर कामरूप वैरी को मारने की मेरी शक्ति नहीं तो तेरी यह भूल है, क्योंकि 'इस शरीर से तो इन्द्रियों को परे (श्रेष्ठ, बलवान्, सूक्ष्म) कहते हैं और इन्द्रियों से परे मन है तथा मन से परे बुद्धि और जो बुद्धि से भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है।'

इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार से बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो ! अपनी शक्ति को समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रु को मार।"

सारी प्रक्रिया 'शत्रु काम' को मारने की कृष्ण भगवान् ने इन सात श्लोकों में समझा दी है और साथ ही यह भी आदेश दे दिया है कि तुम तो आत्मा हो जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा बलवान् है, फिर तुम्हें बलात् किसी कुकर्म में कौन लगा सकता है ? हाँ, 'काम' ही, ये नाना कामनाएँ ही – मनुष्य को कुमार्ग पर लगा देती हैं। इन कामनाओं का नाश कर दो। कामनारहित हो जाओ तो चित्त एकाग्र ही है। समाधान हुआ ही पड़ा है।

शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, ये खजाने (कोष) जब साधक के पास एकत्र हो जाते हैं तो वह षट्सम्पत्ति का स्वामी बनकर भगवान् के दरबार में जाने का अधिकारी बन जाता है।

(4) मुमुक्षुत्व

तत्त्वज्ञान तथा मोक्ष के साधन–चतुष्टय का वर्णन करते हुए विवेक, वैराग्य और षट्सम्पत्ति का वर्णन किया गया है। अब . चौथे साधन 'मुमुक्षुत्व' की ओर ध्यान दीजिए। श्री शंकराचार्य जी से जब पूछा गया कि "**मुमुक्षुत्वं किम् ?**" तो उन्होंने कहा–"**मोक्षो मे भूयादितीच्छा**" अर्थात् "मेरा मोक्ष हो, ऐसी इच्छा का होना मुमुक्षुत्व है।" स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने इसकी व्याख्या यह की है–

"जैसे क्षुधा–तृषातुर को सिवाय अन्न–जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति से अन्य दूसरे में प्रीति न होना मुमुक्षुत्व है।"

'उत्कट इच्छा होना कि सर्व प्रकार के दुःखों से साधक को छुटकारा हो जाए और परमानन्द प्राप्त हो'–साधक जब इस अवस्था में पहुँचता है तो फिर उसे परमार्थ के बिना और कोई बात प्रिय हीं नहीं लगती। ऋषि दयानन्द जी की यह उपमा बड़ी उपयुक्त है कि जैसे भूखे को रोटी और प्यासे को पानी के सिवा और कुछ नहीं सूझता, इसी प्रकार मुमुक्षु को मुक्ति के प्रसंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं भाता। जैसे प्रियतम के प्रेम में प्रेमी सिवाय प्रियतम के बाकी सब–कुछ भूल जाता है, इसी प्रकार मुमुक्षु की अवस्था हो जाती है। वह तब प्रियतम के वियोग में तड़पनेवाले विरही की तरह कबीर के शब्दों में कहता है :

मैं प्यासी हौं पीव की,
रटत सदा पिव–पीव।
पिया मिले तो जीवहौं,
सहजै त्यागो जीव।।

चातक जैसी अवस्था

पृथिवी पर जल की क्या कमी है ? कितनी नदियाँ बहती चली जा रही हैं। हमारे देश की गङ्गा, यमुना, ब्रह्मपुत्र और दूसरे नदी–नद, फिर इतने समुद्र ! परन्तु चातक इनके होते हुए भी स्वाति की बूँद के लिए आकाश की ओर दृष्टि लगाए उड़ता ही रहता है। वह प्यासा मर जाएगा, पर इन नदियों का जल ग्रहण नहीं करेगा :

गङ्गा यमुना सरस्वती, हैं जग में भरपूर।
तुलसी चातक के मते, स्वाति बिना सब घूर।

साधक को ऐसी अवस्था में केवल आत्म–दर्शन की चाह के प्रेम में उन्मत्त हो उठने पर ही मुमुक्षु का पद मिल सकता है। मुमुक्षु फिर संसार में रहता हुआ भी उसके जाल में नहीं फँसता, क्योंकि उसकी वृत्ति हर समय दुःखों से छूटने और परमप्रिय परमात्मा से एक हो जाने की बनी रहती है। फलतः वह विषयों को विष के समान दूर ही से त्याग देता है और सन्तोष, दया, क्षमा, सरलता, शम, दम का अमृत नित्यप्रति सेवन करता रहता है, जिससे वह मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त, चर्म, त्वचा–इन सात धातुओं से बने स्थूल शरीर ही को अपना उपास्य देव नहीं समझता, अपितु इसे अपने प्रियतम तक पहुँचने का साधन–मात्र समझकर इसकी रक्षा करता हुआ आत्मतत्त्व को पाने के लिए हर समय यत्नशील रहता है। वह समझ जाता है कि यह मनुष्यत्व प्रभु की कृपा ही से मिलता है। इसे पाकर प्रभु कृपा का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, अपितु इसे प्रभु–मिलन का एकमात्र साधन जानकर प्रियतम ही की खोज में लगे रहना चाहिए।

ये चार साधन तत्त्वज्ञान के ऋषियों ने वर्णन किए हैं। ऋषि दयानन्द ने इनको मोक्ष के विशेष साधन लिखा है और 'सत्यार्थप्रकाश' के नवम समुल्लास में इनकी सुन्दर व्याख्या भी की है। 'विवेक–चूड़ामणि' में भी इन्हीं के द्वारा साधक मोक्ष का अधिकारी बनता है। वहाँ 71 और 72 दो श्लोकों में सारा सार खींच दिया है :

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु।
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा
न्यासःप्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम्।।
ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्वध्यानं
चिरनित्यनिरन्तरं मुने।
ततोऽविकल्पपरमेत्य विद्वानिहैव
निर्वाणसुखं समृच्छति।।

'मोक्ष का प्रथम हेतु अनित्य वस्तुओं में अत्यन्त वैराग्य होना कहा है। तदनन्तर शम, दम, तितिक्षा और सम्पूर्ण आसक्तियुक्त कर्मों का सर्वथा त्याग है। तदुपरान्त मुनि को श्रवण, मनन, चिरकाल तक नित्य निरन्तर आत्म–तत्त्व का ध्यान रखना चाहिए, तब वह विद्वान् परम निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त होकर निर्वाण–सुख पाता है।

क्रमशः

वेद का चरम लक्ष्य

● पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

लक्ष्य यात्रा का अन्तिम बिन्दु है। यात्रा का आरम्भ हमारी वर्तमान अवस्था से होता है और अन्त में जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं उसी को चरम लक्ष्य कहते हैं। हमारे और हमारे चरम लक्ष्य के बीच में बहुत सी अवान्तर परिस्थितियाँ होती हैं जिनको हम लक्ष्य ही कह सकते हैं, परन्तु चरम लक्ष्य नहीं। चरम लक्ष्य वह है जहाँ हमारी यात्रा की समाप्ति होती है।

वेदों का चरम लक्ष्य क्या है ? इसको ऋषि के शब्दों में सुनिए–

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति, यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं प्रब्रवीमि–ओ३म् इति एतत्।।

चरम लक्ष्य का जिज्ञासु शिष्य आचार्य की सेवा में जाता है और आचार्य उसको यह बताते हैं–

मैं आज तुमको उस परमपद को बताता हूँ जो सब वेदों का चरम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए बड़े–बड़े ऋषि–मुनि तपस्याएँ करते एवं ब्रह्मचर्य जैसे कठोर व्रतों का पालन करते हैं। उस पद का नाम है 'ओ३म्'।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में इसी चरम लक्ष्य का इस प्रकार वर्णन किया है–

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।

ऋ. 1.22.20

बुद्धिमान् लोग 'विष्णु' के उस परमपद की ओर नित्य टकटकी लगाए रहते हैं, जैसे पूर्ण विकसित आँख सूर्य की ओर।

चरम लक्ष्य को यहाँ परमपद कहा है। उपनिषद् जिसको 'ओ३म्' कहती है, ऋग्वेद उसी को 'विष्णु' कहता है। विष्णु 'ओ३म्' है, ओ३म् विष्णु है। हर जीव का वह चरम लक्ष्य है जिसको यह लक्ष्य दीख जाता है उसको योग के शब्दों में **"सप्तधा प्रान्त भूमि प्रज्ञा"** की प्राप्ति हो जाती है। यह स्थिति बड़ी जी लुभानेवाली है। पाठक थोड़ा–सा विचार करें। यदि आपको कभी यह प्रतीत होने लगे कि अब कोई 'जिज्ञासा' नहीं रही, अर्थात् जिस–जिस अनिष्ट को छोड़ने चाहते थे, वह छोड़ चुके; कोई 'लिप्सा' नहीं रही, अर्थात् जिसको पाना चाहते थे वह पा लिया; कोई 'चिकीर्षा' नहीं रही अर्थात् जिस काम को करना चाहते थे कर चुके; कोई 'जिज्ञासा' नहीं रही, अर्थात् जिसको जानना चाहते थे वह सब जान गए; चित्त शांत है, इसकी विक्षेपक वृत्तियाँ नष्ट हो चुकीं – भुने हुए चने के समान उनमें फिर उगने की शक्ति जाती रही। अब हमने अपने स्वरूप को पहचान लिया, तो आप बड़े आनन्दित होंगे, जैसे यात्री मंजिल पर पहुँचकर हर्षित होता है। वही गति सात प्रकार की भूमि प्राप्त करनेवाले आत्मा की होती है। यही परम पद है। यही चरम लक्ष्य है।

परन्तु वेद में तो परम पद या चरम लक्ष्य के अतिरिक्त सहस्रों अवान्तर लक्ष्य भी हैं। यह क्यों ? जरा समझिए – मैं प्रयाग से दिल्ली को चला। घरवाले पूछते हैं "कहाँ जा रहे हो?" मैं कहता हूँ "दिल्ली को।" मैंने नौकर से कहा, "तांगा लाओ।" वह पूछता है "कहाँ को ?" मैं कहता हूँ "स्टेशन को।" अब यदि नौकर तर्क करने लगे कि आप तो दिल्ली जा रहे हैं, दिल्ली के लिए ताँगा क्यों न लाऊँ ? स्टेशन के लिए क्यों लाऊँ? तो आप क्या कहेंगे? यही न कि कोई ताँगा इलाहाबाद में ऐसा नहीं है जो दिल्ली पहुँचा दे। यद्यपि मेरा चरम लक्ष्य दिल्ली है, तथापि पहला लक्ष्य तो रेल का स्टेशन है। ताँगेवाले से मैं नहीं कहता कि दिल्ली जा रहा हूँ। उसे दिल्ली कहना बेकार है। स्टेशन पहुँचकर दिल्ली का प्रश्न उठेगा। इसी प्रकार जीवन–यात्री जीव को तो वहाँ से आरम्भ करना है, जहाँ वह है। चरम लक्ष्य एक होते हुए भी आरम्भ–बिन्दुओं की भिन्नता के कारण पहले लक्ष्य एक नहीं।

एक और कल्पना कीजिए, आपके साथ आपका बच्चा भी दिल्ली जा रहा है परन्तु दिल्ली का जो ज्ञान आपको है उसको नहीं। आप अपनी प्रज्ञारूपी आँख से दिल्ली को देख रहे हैं; बच्चा नहीं देख रहा। इसी प्रकार इस समस्त संसार का लक्ष्य, परमपद विष्णु–पद, ओ३म् – पद होते हुए भी प्राणियों को यह ज्ञान नहीं कि हम किधर जा रहे हैं। जा रहे अवश्य हैं, परन्तु किधर ? यह पता नहीं। यजुर्वेद कहता है–

याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यादधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

– यजुर्वेद 40.8

उस प्रभु ने अपनी नित्य रहनेवाली प्रजा के लिए, जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट–पतंग सभी शामिल हैं, उचित अर्थों को नियत किया।

अर्थ ही लक्ष्य है। सहस्रों अर्थ हैं, सहस्रों लक्ष्य हैं। जो चरम लक्ष्य है वह सब नहीं दीखता, वह परोक्ष है। उसको देखने के लिए 'प्रज्ञा चक्षु' चाहिए। इसीलिए तो वेद ने कहा कि **'सूरयः'** अर्थात् विद्वान् विचक्षण पुरुष ही परमपद पर दृष्टि रख सकते हैं। पाठक ! वेद के सुन्दर उदाहरण पर दृष्टि डालें। सूर्य को कौन देख सकता है ? वही, जिसकी आँख **'आततम्'** अर्थात् पूर्ण विकसित हैं। दो प्रकार की आँखें सूर्य को देखने में असमर्थ हैं – कोमल नवजात बच्चे की; और दुखती हुई आँख बच्चे की आँख में अभी उतनी शक्ति नहीं आई कि सूर्य के प्रकाश को धारण कर सके। रोगी की आँख रोग के कारण अँधेरा चाहती है और प्रकाश से भागती है। इसी प्रकार बाल बुद्धिवाले अज्ञ चरम लक्ष्य को पहचान नहीं सकते और भ्रमवाले भी उसको पहचानने में असमर्थ हैं। बालक की आँख को विकसित करने के लिए उत्तम शिक्षणालय चाहिए। शिष्य को गुरु मिले तो चरम लक्ष्य को देख पाए। ऋषि दयानन्द को अज्ञ से विज्ञ बनाने के लिए गुरु विरजानन्द की आवश्यकता थी। रुग्ण आँख के लिए हस्पताल चाहिए।

पीत्वा मोहमयी प्रमाद–मदिरां
उन्मत्तभूतो जगत्।

जो मोह के भ्रमजाल में पड़ा है उसके लक्ष्य सैकड़ों हैं और वे परम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले नहीं हैं। परन्तु न तो सब मूर्ख एक–से होते हैं, न सब रोगी आँखें एक ही रोग से पीड़ित होती हैं इसीलिए यह संसार का प्रपंच बड़ा जटिल है। यह शिक्षण ालय भी है और हस्पताल भी है। इलाहाबाद से दिल्ली सीधे मार्ग पर जाते हुए भी आप रोगी हो सकते हैं या आपकी रेलगाड़ी बिगड़ सकती है। यदि ऐसा कोई दुर्भाग्य हुआ तो आप देर में पहुँचेंगे या न भी पहुँचें। इसी प्रकार जिस पुरुष ने चरम लक्ष्य की कुछ अनुभूति प्राप्त कर ली और साधु–जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, उसके मार्ग में भी रोड़े आ सकते हैं। इनको योग ने **'अन्तराय'** के नाम से पुकारा है और इनकी नौ संख्या गिनाई है–

व्याधि (बीमारी), स्त्यान (चंचलता), संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति (लोलुपता), भ्रान्ति दर्शन (भ्रम), उपलब्ध भूमिकत्व (ढिलमिलपन), अनवस्थितत्व (चित्त की) एक–सी स्थिति न होना।

यदि विचार करके देखा जाए तो संसार में जो–जो और जहाँ–जहाँ जीवनान्दोलन हो रहे हैं, वे सब किसी न किसी 'अन्तराय' (विघ्न) के अन्तर्गत आ जाते हैं। मनुष्य नित्य इन्हीं अन्तरायों से युद्ध करता मिलता है। यदि उन अन्तरायों में से किसी की निवृत्ति हो गई तो वह परम लक्ष्य की ओर चल पड़ता है, अन्यथा किसी अन्य अन्तराय के दलदल में फँस जाता है। उदाहरण लीजिए–

आप मूर्तिपूजक थे। आपको पता नहीं था कि ईश्वर क्या है और कैसे पहचाना जाता है। आपने ऋषि दयानन्द या उनके किसी भक्त का उपदेश सुना। प्रमाद कम हुआ और आपको गायत्री की शिक्षा मिली। आपको चरम लक्ष्य कुछ–कुछ धुँधला–सा दीख पड़ा। आप समाज के सदस्य बन गए। एक अन्तराय दूर हुआ, परन्तु आप बीमार हो गए या समाज के निर्वाचन के समय पार्टीबन्दी में फँस गए, या दम्भ–वृत्ति ने आ घेरा या लोभ में फँसकर उपदेशों को धन कमाने का साधन बनाने लगे, तो यह समझिए कि आपका चरम लक्ष्य आँख से ओझल हो गया। आपकी यात्रा जारी है, परन्तु परम लक्ष्य की ओर नहीं, अन्तरायों की निवृत्ति के लिए नहीं, अपितु उनको दृढ़ करने की ओर। इस प्रकार असंख्य जीव इस भवसागर की लहरों के ऊपर अहर्निश उछलते रहते हैं। वे प्रपंच के भँवर में चक्कर लगाते हैं, परन्तु आगे नहीं बढ़ते। इन भँवरों से निकलने के लिए वर्णाश्रम–धर्म की भिन्न–भिन्न प्रकार की मर्यादाएँ वेदों में दी हैं, वे भी लक्ष्य हैं, उन भँवरों में घिरे हुए जीवों के लिए। उनके परित्राण के वे मार्ग हैं। जिन्होंने उन लक्ष्यों का अवलम्बन किया, वे भँवर से बाहर आ गए और उनको आगे का लक्ष्य दीखने लगा। जो चूके, वे भँवर में

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

पाठक थोड़ा-सा विचार करें। यदि आपको कभी यह प्रतीत होने लगे कि अब कोई 'जिज्ञासा' नहीं रही, अर्थात् जिस-जिस अनिष्ट को छोड़ने चाहते थे, वह छोड़ चुके; कोई 'लिप्सा' नहीं रही, अर्थात् जिसको पाना चाहते थे वह पा लिया; कोई 'चिकीर्षा' नहीं रही अर्थात् जिस काम को करना चाहते थे कर चुके; कोई 'जिज्ञासा' नहीं रही, अर्थात् जिसको जानना चाहते थे वह सब जान गए; चित्त शांत है, इसकी विक्षेपक वृत्तियाँ नष्ट हो चुकीं - भुने हुए चने के समान उनमें फिर उगने की शक्ति जाती रही। अब हमने अपने स्वरूप को पहचान लिया, तो आप बड़े आनन्दित होंगे, जैसे यात्री मंजिल पर पहुँचकर हर्षित होता है। वही गति सात प्रकार की भूमि प्राप्त करनेवाले आत्मा की होती है। यही परम पद है। यही चरम लक्ष्य है।

जय हिन्दी-जय देव नागरी

● भद्रसेन

मित्र सोमेश! आओ हिन्दी बाज़ार चलें ।

सोमेश – आज क्या उधर कोई विशेष कार्य है ?

अजय – हाँ, वहाँ के दो मित्रों ने आमन्त्रित किया है। दोनों जब हिन्दी बाजार पहुँचे तो देखा कि बाजार के प्रारम्भ में ही एक सुन्दर वस्त्र बन्धा हुआ है और उस पर लिखा है– **'राष्ट्रभाषा प्रेमी आप का स्वागत करते हैं।'** प्रायः हर दुकान पर जगह–जगह **जय हिन्दी जय देवनागरी** जैसे रंगीन, आघोष टंगे हुए हैं। इन आघोषों से इस बाज़ार की शोभा अनोखी सी झलकती है। बाज़ार के बीच में एक नामपट्ट पर लिखा है– **भारत की एकता – हिन्दी की विशेषता** बाज़ार की समाप्ति पर एक अन्य पट्ट पर लिखा था–**'अपने व्यवहार में हिन्दी को अपना कर, इस को अमर बनाइए।'**

इस नए परिवर्तन को देखते हुए दोनों मित्र अपने मित्र के आवास पर पहुँचे। परस्पर अभिवादन के पश्चात् आवश्यक बातचीत और जलपान हुआ। इसकी समाप्ति पर सुमनेश ने कहा–मित्रो ! आप कुछ देर और रुक सको तो बहुत अच्छा हो क्योंकि अभी यहाँ हिन्दी के एक अनन्य उपासक, प्रतिष्ठित प्राध्यापक आ रहे हैं। अतः अच्छा हो हम सब मिलकर उनका स्वागत करें।

अजय– क्या बाज़ार में इसी दृष्टि से आयोजन किया गया है?

सुमनेश – हाँ, यह सारा आयोजन उन्हीं के स्वागत में ही है।

तभी थोड़ी देर में प्रतिष्ठित प्राध्यापक वहाँ पधारे। सभी ने उन का स्वागत किया और अभिवादन के साथ बैठने पर वार्तालाप प्रारम्भ हुआ।

सोमेश – अच्छा हो, इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए आप पहले हिन्दी भाषा की पृष्ठभूमि को बताएँ।

प्राध्यापक – भारत एक प्राचीन और विशाल देश है तथा इसका साहित्य भी बहुत समृद्ध है। भारत में प्रारम्भ से ही धर्म, ज्ञान के क्षेत्र में खुली स्वतन्त्रता रही है। यहाँ इन के सम्बन्ध में कभी भी कट्टरता, संकीर्णता नहीं छाई इसीलिए यहाँ हज़ारों वर्षों तक संस्कृतभाषा का प्रचार–प्रसार रहा। साधारण जनता जब संस्कृत से दूर होने लगी तो आज से तीन हज़ार साल पूर्व संस्कृत के साथ ही साथ प्रदेश–प्रदेश के अनुरूप प्राकृतभाषा सामने आई और कुछ समय बाद पाली भी आ जुड़ी। जैन–बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा के साथ उनका साहित्य प्राकृतपाली के साथ संस्कृत में भी रचा जाने लगा। इन धर्मों और भाषाओं का विना रोक–टोक प्रचार होता रहा।

सर्वेश– भारतीय भाषाओं के प्रसार में हिन्दी भाषा ने कब प्रवेश किया ?

प्राध्यापक – आज से पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व आधुनिक भारतीय भाषाओं तमिल, तेलगू, बंगला आदि का प्रवेश प्रारम्भ हुआ। ये अपने–अपने क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत, पाली के साथ धीरे–धीरे पनपने लगीं। सारे देश की साँझी भाषा के रूप में संस्कृत का स्थान अक्षुण्ण रहा। इसी लिए इन सभी भाषाओं में संस्कृत की तत्सम, तद्भव शब्दराशि, व्याकरण प्रक्रिया, वस्तुकथा और काव्यलक्षण समान रूप में प्राप्त होते हैं। तभी तो संस्कृत को इन भाषाओं की जननी तथा धात्री कहा जाता है। राजस्थानी, अवधी, ब्रज आदि रुझानों में से निकलती हुई हिन्दी भाषा भी सामने आई। हज़ारों कवियों, सन्तों, भक्तों, विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की हर विधा को पल्लवित, पुष्पित और फलित किया।

अजय– भारतीय भाषाओं के इस सामान्य संकेत के साथ भारत के भौगोलिक परिवेश तथा सामाजिक इतिहास पर भी दृष्टिपात कर दिया जाए, तो मेरे विचार यह पृष्ठभूमि **'सोने में सुहागे'** वाली बात हो सकती है।

प्राध्यापक – संसार के इतिहास में भारत का एक प्रतिष्ठित स्थान है। भारत के प्राचीन और विशाल होने से इसकी सीमाओं में समय–समय पर परिवर्तन आया। कभी आर्यावर्त और कभी भारत की प्रसिद्धि चर्चित हुई। विशाल भूखण्ड होने के कारण कभी छोटे–छोटे राज्यों के रूप में और कभी सामूहिक रूप में यहाँ प्रशासन चला। भारत का विशाल भूखण्ड–मैदानी पहाड़ी, पठारी, रेतीला और समुद्र तटीय है। अतः यहाँ प्रारम्भ से ही अनेक तरह के खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज तथा वेश–भूषाएँ प्रचलित हुईं। सवा सौ वर्ष पूर्व तक आज की तरह यातायात और सन्देश संचार के साधन विकसित तथा प्रचलित नहीं थे अतः कम व्यक्तियों का सारे भारत में परस्पर सम्पर्क होता था। केवल तीर्थयात्रा, धर्मप्रचार और व्यापार ही सम्पर्क के माध्यम थे।

सर्वेश – जैसे कि यह पढ़ाया जाता है कि हिन्दी भाषा वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के रूपों में से निकलती हुई आधुनिक रूप में प्रतिष्ठित हुई है। अच्छा हो हिन्दीभाषा के आधुनिक रूप के प्रारम्भ पर भी कुछ प्रकाश डाला जाए।

आज चाहे विज्ञान के कारण प्रकट हुए यातायात और सन्देश संचार के साधनों से हम एक-दूसरे के निकट आ चुके हैं। पुनरपि भारत में अनेकत्र अनेक तरह की अनेकता दिखाई देती हैं। इस अनेकता में एकता लाना वस्तुतः हिन्दी की अपनी विशेषता है। क्योंकि आज भारत प्रशासन की दृष्टि से केन्द्रीय प्रदेश और राज्यों के रूप में { 7+25 =} 32 क्षेत्रों में विभक्त है। संविधान के अनुसार मान्यता प्राप्त 15 भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं और बोलियों की संख्या तो लगभग एक सौ से भी अधिक है। केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, अपितु धर्म, वर्ग (जाति) खान-पान, रीति-रिवाज़, वेश-भूषा के रूप में भी भारत में अनेकता प्राप्त होती है।

प्राध्यापक – हिन्दी भाषा का समृद्ध साहित्य स्वतः इसके पूर्व कालों या पूर्व रूपों को प्रमाणित करता है। पुनरपि यह एक सर्वप्रसिद्ध बात है, कि अंग्रेज़ भारत में व्यापार करने आए थे, पर जब उन्होंने यहाँ प्रशासन को छोटे–छोटे टुकड़ों में बँटे हुए तथा परस्पर सिर फुटौल करते हुए देखा और अनुभव किया कि प्रशासन में सर्वत्र अव्यवस्था है। शासक वर्ग अपने मनमौजीपन में मस्त है तब अंग्रेजों ने अपनी होशियारी से इन्हीं को आपस में लड़ाया और स्वयं धीरे–धीरे यहाँ के शासक बन गए। अपने शासन की सुदृढ़ता के लिए अंग्रेज़ों ने भारतीयों की एक सेना रखी, उसके आवागमन और प्रशासन को काबू में रखने के लिए सड़कों रेलों, स्कूलों का जाल बिछाना शुरु किया। इन्हीं दिनों ही औद्योगिक–यान्त्रिक परिवर्तन भी यूरोप से भारत आया। प्रशासनिक सुविधा और सुदृढ़ता के लिए अंग्रेज़ों ने जनता से सम्पर्क बनाने के लिए सम्पर्क भाषा की ओर भी ध्यान दिया।

प्रशासनिक, औद्योगिक, यान्त्रिक परिवर्तनों के. कारण भारतीयों के विचारों में भी हल–चल शुरू हुई। इस हल–चल को दैनिक–साप्ताहिक आदि पत्रों के माध्यम से भी प्रकट किया जाने लगा। इन्हीं दिनों बंगाल में ब्राह्म समाज ने शिक्षा में नई लहर आरम्भ की। इसके कुछ समय बाद 1865 के आस–पास महर्षि दयानन्द ने भी भारतीयों को झकझोरना शुरु किया।

हिन्दी भाषा के साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु जैसे लेखक भी सुधार की भावनाओं के साथ खड़ी बोली में रचनाएँ करने लगे। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी ने अपने पैर जमाए। जैसे–जैसे स्वाधीनता की भावना बलवती हुई वैसे–वैसे भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी सामने आने लगी। उन दिनों के भारतीय धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय नेताओं ने भी यह अनुभव किया कि भारत की साँझी भाषा हर तरह से हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी के साहित्यिकों ने हर विद्या से हिन्दी को समृद्ध बनाकर राष्ट्रभाषा के रूप में साकार करने का हर सम्भव प्रयास किया।

अजय–अभी हम जब बाज़ार से आ रहे थे तो एक स्थल पर नामपट्ट था–**'हिन्दी को अपनाइए–एकता को बढाइए'**–इस आघोष का क्या भाव है ?

प्राध्यापक – आज चाहे विज्ञान के कारण प्रकट हुए यातायात और सन्देश संचार के साधनों से हम एक–दूसरे के निकट आ चुके हैं। पुनरपि भारत में अनेकत्र अनेक तरह की अनेकता दिखाई देती हैं। इस अनेकता में एकता लाना वस्तुतः हिन्दी की अपनी विशेषता है। क्योंकि आज भारत प्रशासन की दृष्टि से केन्द्रीय प्रदेश और राज्यों के रूप में { 7+25 =} 32 क्षेत्रों में विभक्त है। संविधान के अनुसार मान्यता प्राप्त 15 भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं और बोलियों की संख्या तो लगभग एक सौ से भी अधिक है। केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, अपितु धर्म, वर्ग (जाति) खान–पान, रीति–रिवाज़, वेश–भूषा के रूप में भी भारत में अनेकता प्राप्त होती है।

ऐसी स्थिति में एक राष्ट्र के नाते एक राष्ट्रभाषा अत्यावश्यक हो जाती है। जिससे सभी स्तरों पर परस्पर सम्पर्क हो सके क्योंकि कोई भी भारतीय नागरिक, अधिकारी, मन्त्री सारी भारतीय भाषाओं से परिचित नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में एक भाषा के द्वारा ही सम्पर्क हो सकता है। देश में अनेक अवसरों पर भिन्न–भिन्न प्रान्तों में समान स्थिति या समस्या सामने आती है। तब एक भाषा के बिना

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

जब स्वामी श्रद्धानन्द जी फूट-फूट कर रो पड़े

● पण्डित देशबन्धु विद्यालंकार

1917 का साल था। मैं महाविद्यालय के अन्तिम वर्ष में प्रविष्ट हो रहा था। ईस्टर की छुट्टियों में गुरुकुल के वार्षिक उत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। स्नातक बनने वाले ब्रह्मचारियों में से किसी ने स्वामी जी से पत्र द्वारा निवेदन किया कि स्नातक होने से पहले हम आपसे कुछ वार्तालाप करना चाहते हैं। स्वामी जी ने कुछ सोचकर उस वार्तालाप में हमारी श्रेणी को भी बुला लिया। स्वामीजी के पूछने पर कि क्या बात करना चाहते हो, उस ब्रह्मचारी (आत्मानन्द) ने कहा–

"स्वामी जी ! आर्य जनता ने हमसे जो आशाएँ लगाई थीं, क्या हम वह बन गए? उत्सव पर जो जोशीले भजन गाए जाते हैं **'आएँगे खत अरब से जिनमें लिखा यह होगा, गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।** क्या हम में वह योग्यता आ गई है, जिसकी आर्य जनता शताब्दियों से हमसे आशा करती रही है ?"

कुछ देर तक स्वामीजी स्तब्ध रहे और फिर जेब से रुमाल निकाल कर मुख पर रख कर फूट–फूट कर रो पड़े। कुछ क्षण तक स्तब्ध रहने के बाद सँभल कर बोले–

"पुत्रो ! मैं तुमको धोखा देना नहीं चाहता। जो सुनहले स्वप्न मैंने जनता के सामने रखे थे, उनको पूरा करने में मैं बिल्कुल असमर्थ रहा हूँ। इस असमर्थता के पीछे गुरुकुल प्रणाली का दोष नहीं, मेरी असमर्थता ही कारण रही। मैं तो 10–12 बालकों को लेकर एकान्त जंगल में साधना करना चाहता था। उसके लिए बालक और उपाध्याय भी एकत्रित कर लिए, परन्तु प्रतिनिधि सभा ने इस गुरुकुल की कल्पना को स्कूल और कॉलेज का पहरावा पहनाकर इसमें प्रतिवर्ष भर्ती करके ब्रह्मचारियों की संख्या कई सौ तक पहुँचा दी। मेरे अन्दर इतने ब्रह्मचारियों का आचार्य बनने की क्षमता नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि मैं तुम लोगों की देख–रेख नहीं कर सका और मेरा गुरुकुल खोलने का स्वप्न अधूरा ही रह गया।"

स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम) जब गुरुकुल को प्रारम्भ कर रहे थे तो आठ–दस विद्यार्थियों के साथ–साथ अध्यापकों का भी प्रबन्ध कर चुके थे। उन अध्यापकों में से प्रमुख थे, श्री गंगादत्तजी, श्री पं. नरदेवजी, श्री पं. भीमसेनजी आदि। गुरुकुल के प्रारम्भिक 5 वर्ष इन्हीं विद्वानों ने वहाँ की शिक्षा–दीक्षा का भार उठाया। बाद में प्रतिनिधि सभा (महाशय कृष्ण पार्टी) ने गुरुकुल के स्वरूप को बदलने का निश्चय किया। स्थानीय व्यवस्था में इतना भारी परिवर्तन किया, जो इस विद्वन्मण्डली के अनुकूल न था। परिणाम यह हुआ कि पाँचों प्रकाण्ड पण्डित एक ही साथ गुरुकुल भूमि को छोड़कर गंगा पार गंगनहर के किनारे पर स्थित स्वामी दर्शनानन्द द्वारा स्थापित महाविद्यालय ज्वालापुर चले गए। सच पूछें तो स्वामी श्रद्धानन्दजी की कल्पना के गुरुकुल की अन्त्येष्टि उसी दिन हो गई थी।

{स्रोत : स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्व, सम्पादक : डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ 126–7, संस्करण 2005, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}

☞ पृष्ठ 04 का शेष

वेद का चरम लक्ष्य

फँस गए और न जाने कितने दिनों फँसे रहेंगे। वेदों ने चरम लक्ष्य बताया ओ३म् या विष्णु का परमपद क्योंकि इससे आगे तो जीव की गति ही नहीं। यह परा गति है। इस गति का सुन्दर वर्णन छांदोग्य उपनिषद् के आरम्भ में किया है–

एषां भूतानां पृथिवी रसः,
पृथिव्या आपो रसो, ऽपामोषधयो
रसः, ओषधीनां पुरुषो रसः,
पुरुषस्य वाग्रसो,
वाच ऋग् रसः, ऋचः साम रसः,
साम्न उद्गीथो रसः।।
स एष रसानां रसतमः परमः
परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः।

– छान्दोग्योपनिषद् 1.2

यहाँ 'रस' का अर्थ श्री शंकर स्वामी ने गति किया है। जिस प्रकार यात्रा में यात्री जो पग रखता है उसका लक्ष्य (या गति) अगला पग होता है, उसी प्रकार जगत् की जो वस्तु या व्यापार है वह अगली व्यवस्था की प्राप्ति के लिए है। वही उसकी गति है, मंजिल है, लक्ष्य है। सब भूतों के बनाने का प्रयोजन था पृथिवी का बनाना। पृथिवी का प्रयोजन था जल। जल इसलिए बना कि औषधियाँ बन जाएँ। औषधियों को बनाने का प्रयोजन था पुरुष का शरीर। पुरुष के शरीर की अगली गति है वाणी। वाणी इसलिए बनी कि ऋग्वेद का ज्ञान हो सके। ऋगादि के ज्ञान की अगली गति या मंजिल है साम या स्तुति। साम का रस (गति या लक्ष्य) है ब्रह्म या ओ३म् इसलिए ओ३म् के परमपद को समस्त प्रपंच का रसतमः (चरम लक्ष्य) कहा गया। यह 'परमा गति' है। इससे आगे गति नहीं।

इलाहाबाद से दिल्ली की जो यात्रा मैंने की उसका प्रत्येक भाग दिल्ली – यात्रा में शामिल है। ताँगा क्यों आया? दिल्ली की प्राप्ति के लिए, कुली क्यों बुलाया ? दिल्ली के लिए,टिकट क्यों लिया? दिल्ली के लिए, रेल में क्यों बैठे ? दिल्ली के लिए, खाना क्यों खाया ? सोए क्यों? सब व्यापार दिल्ली के लिए। **दिल्ली गतीनां गतिः 'रसानां रसः ' 'लक्ष्याणां लक्ष्यः' हो गया।**

इस परमपद तक पहुँचने के लिए नाक की सीध, सीधा मार्ग नहीं है, अनेक मोड़ हैं, इन्हीं का नाम जीवन या प्रपंच है, परन्तु जो इस चरम लक्ष्य पर दृष्टि रखता है वह अवान्तर लक्ष्यों को पार कर जाता है। योग ने कहा कि – **"तत्प्रतिषेधार्थं एक तत्त्वाभ्यासः"** अन्तरायों को दूर करने के लिए ही चरम लक्ष्य पर दृष्टि रखना आवश्यक है।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँढन गई रही किनारे बैठ।।

किनारे मत बैठो ! ढूँढते रहो, लक्ष्य तक पहुँच जाओगे।

'गंगा ज्ञान सागर' से साभार
सम्पादक : प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

☞ पृष्ठ 05 का शेष

जय हिन्दी-जय देव ...

एक–सी समस्या की स्थिति में एकता, समन्वय कैसे हो सकता है? एक–सी ही समस्या को लेकर प्रतिनिधि मण्डल मन्त्री अधिकारियों से मिलता है, तब एक भाषा के बिना आपस का भाव कैसे स्पष्ट हो सकता है। सुख–दुख, बाढ़ आदि के समय केन्द्रीय नेता उस–उस स्थल पर जाकर सभी प्रान्तों की जनता से एक भाषा के बिना हाल–चाल कैसे जान सकते हैं ?

भारत में नौकरी, खेल, पर्यटन, व्यापार आदि के लिए एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने की प्रायः ज़रूरत होती है तब किसी एक भाषा के बिना परस्पर भावबोध तथा पारस्परिक व्यवहार कठिन हो जाता है।

भारत में सम्पर्क भाषा का यह कार्य हिन्दी ही सरलता से चला सकती है क्योंकि हिन्दी संस्कृत की निकटतम भाषा है और यह जहाँ भारतीय धर्मों, भावनाओं, परम्परा से जुड़ी हुई है, वहाँ भारतीयों के एक बहुत बड़े वर्ग द्वारा बोली और समझी जाती है। अतः हिन्दी भारतीयों की एकता का एक सशक्त साधन है। इसीलिए राष्ट्रीय एकता के लिए सभी राष्ट्र प्रेमियों को सहर्ष इसको अपनाना चाहिए। हिन्दी किसी विशेष वर्ग, प्रदेश, धर्म से भी अब जुड़ी हुई नहीं रही। अतः बड़ी सरलता से सारे भारतीयों का प्रतिनिधित्व कर सकती है।

सोमेश– हाँ, आपने हिन्दी के सम्बन्ध में बहुत सारी बातें स्पष्ट की हैं। अच्छा हो अब **'हिन्दी को अपनाइए और इस को अमर बनाइए'** इस नामपट्ट पर भी प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

प्राध्यापक– वस्तुतः सब से महत्त्वपूर्ण बात यही है कि भाषा सम्बन्धी व्यवहार में हिन्दी प्रेमी जब हिन्दी को अपनाएँगे, तभी तो वे जड़ को सींचकर हिन्दी को हरा–भरा बनाएँगे। हम हिन्दी की अमरता और जय चाहते हैं। अमर का अर्थ है– न मरना, जीवित रहना। एक जीवित व्यक्ति की तरह भाषा का व्यवहार में आते रहना ही उसकी अमरता है। बोलने–लिखने–पढ़ने के व्यवहार में हम जिस भाषा को लाते हैं, वही इस तरह अमर बनती है।

जैसे किसी खेल में अभ्यास से जीत होती है ऐसे ही श्रद्धा, लगन और सम्मान के साथ जब लगातार अपने व्यवहार में हिन्दी को अपनाएँगे तभी हिन्दी की जय चरितार्थ होगी। अतः अपने व्यवहार में अपना कर ही हम हिन्दी को अमर और जय युक्त बना सकते हैं।

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

ऋषि दयानन्द के चिन्तन में मानवतावादी स्वर

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

प्रायः कहा जाता है कि ऋषि दयानन्द ने 'वेदों की ओर लौटो' (Back to the Vedas) का नारा दिया। स्वामीजी के बारे में बहुत कुछ पढ़ने तथा समझने पर भी मैं यह नहीं जान सका कि इस कथन का स्रोत क्या है ? कब और किस सन्दर्भ में स्वामीजी ने वेदों की ओर लौटने की बात कही थी ? तथापि यह सच है कि ऋषि दयानन्द ने वैदिक चर्चा का पुनरुद्धार किया था तथा वेदों को मानव जीवन के साथ जोड़ा। इसका एक कारण जो हमारी समझ में आता है वह यह है कि दयानन्द ने वेदों में मानववाद की उदात्त विचारधारा को देखा था। वेदों में जो कुछ कहा गया है, किसी वर्ग, नस्ल, देश–प्रदेश अथवा विशिष्ट भाषा बोलनेवालों को लक्ष्य में रखकर नहीं कहा गया है। वेदों के अनेक मन्त्रों में मनुष्य मात्र के प्रति मैत्री की भावना के दर्शन होते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है– हम प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखें, समस्त प्राणी हमारे मित्र हैं और हम उन्हें इसी भाव से देखते हैं। **{दृते दृंह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजु. 36.18}** यजुर्वेद में मानव की संस्कृति को समस्त विश्व में व्यापक 'विश्ववारा संस्कृति' कहा गया है। **{सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः।। यजु. 7.14}**

यदि संसार के समस्त मानव ही नहीं सारे प्राणी हमारे विश्वसनीय मित्र हैं तो हमारा किसी से भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। यजुर्वेद की प्रार्थना है कि संसार में हम जहाँ कहीं, जो भी चेष्टा करते हैं, ईश्वर हमें वहाँ निर्भीक बनाए। हम मानवी प्रजा तथा पशु–जगत् से निर्भीक रहें। **{यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।। यजु. 36.22}** वेदों में समस्त जगत् को एक ऐसा नीड़ कहा है जिसमें सम्पूर्ण प्राणिजगत् सुख पूर्वक निवास करता है। यह विश्वनीड़ स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा है जिसकी गोद में सम्पूर्ण प्राणि–जगत् विश्राम पाता है। **{विनस्तत्पश्यन्निहतं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु।। यजु. 32.8}**

दयानन्द ने वेदों में प्रदर्शित इस मानववाद को परखा था, समझा था तथा वे इसके प्रचार–प्रसार के इच्छुक थे। जब उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की तो इसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना ठहराया। {आर्यसमाज का छठा नियम–**संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।**} यदि उनकी दृष्टि संकीर्ण होती या वे किसी विशिष्ट जाति, वर्ग, देश, प्रदेश का हित चिन्तन करते तो संसार का व्यापक हित उनकी कार्य योजना का अंग नहीं बनता। व्यक्ति और समाज के हितों का सापेक्षित महत्त्व बतानेवाला तथा व्यष्टि और समष्टि हितों की अन्योन्य निर्भरता बतानेवाला आर्यसमाज का नवाँ तथा दसवाँ नियम भी दयानन्द के व्यापक मानवीय दृष्टिकोण का परिचायक है। **{प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में स्वतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।}**

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में मनुष्य सर्वोपरि है। **'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'** {महाभारत की एक सूक्ति।} की आर्ष वाणी को उन्होंने माना तथा अपने अन्तस्तल से उसको स्वीकारा। उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ मनुष्य कौन है ? स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के प्रकरण में वे लिखते हैं–"मनुष्य उसी को कहना कि मनन– शील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे, अर्थात् जहाँ तक हो सके, वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।" **{स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश}** दयानन्द की दृष्टि में यही मनुष्य रूप धर्म है। अनाथ और निर्बल की सहायता करने के लिए तो अनेक लोग आगे आ सकते हैं, किन्तु सबल अधर्मात्मा का अप्रियाचरण करने का साहस बहुत कम लोग बटोर पाएँगे। धर्मात्मा और अधर्मात्मा के प्रति इस प्रकार का सन्तुलित आचरण निर्दिष्ट करना दयानन्द के चिन्तन की विशेषता है।

दयानन्द को भर्तृहरि का एक नीति श्लोक अत्यन्त प्रिय था

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु। लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणम् अस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीतिशतक श्लोक 84

इसमें कहा गया है कि सच्चा धैर्यवान् मनुष्य वह है जो सत्य, न्याय और धर्म के पथ से कभी विचलित नहीं होता। न्यायनिष्ठ व्यक्ति को ही धीर पुरुष कहना चाहिए। उसकी विशेषता यह है कि वह निन्दास्तुति (मानापमान), सम्पन्नता– दरिद्रता तथा जीवन–मृत्यु की स्थिति में अपना धैर्य नहीं खोता और न्याय (इसे वे प्रसंग प्राप्त होने पर धर्म और सत्य भी कहते हैं) के पथ से कभी नहीं हटता। दयानन्द को महामति विदुर का वह वाक्य भी प्रिय था जिसमें कहा गया है कि संसार में मधुरभाषी लोग तो बहुसंख्यक हैं, किन्तु ऐसे लोग नितान्त अल्प हैं जो अप्रिय, किन्तु पथ्यकारक (लाभप्रद) बात कहते हैं, ऐसी बात को सुननेवाले तो और भी कम हैं। **{सुलभाः पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। महा. उद्योग–पर्व 37.15}**

मानवमात्र के लिए मानने योग्य, हितपूर्ण बातों को दयानन्द **'सर्वतन्त्र सिद्धान्त'** कहते हैं जिसमें पक्षपात का लेशमात्र भी नहीं रहता। **{स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश}** उनका कहना है कि यदि सारे विद्वान् एक मत हो जाएँ तो वे संसार का हित करने में सक्षम होंगे। दयानन्द द्वारा की गई मतमतान्तरों की समीक्षा और आलोचना सर्वथा पक्षपात शून्य है। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में वे लिखते हैं कि "यदि मैं भी कभी किसी एक (मत सम्प्रदाय) का पक्षपाती होता जैसे कि आजकाल (गुजराती प्रयोग) के लोग स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते हैं और दूसरे मत की निन्दा, हानि और उसे बन्द कराने में तत्पर रहते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।" इस उद्धरण में दयानन्द मत–मतान्तरों के बारे में विचार करते समय पक्षपात तथा एकांगीपन को मानवता विरोधी मानते हैं। दयानन्द की दृष्टि में "जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानिमात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।"

ग्यारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में दयानन्द का मानवतावादी स्वर पुनः मुखरित हुआ जहाँ उन्होंने लिखा– "मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिए है न कि वादविवाद, विरोध करने–कराने के लिए।" दयानन्द का विश्वास था कि "जब तक इस मनुष्य जाति से परस्पर मिथ्या मत–मतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा, तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या–द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह असाध्य नहीं है।"

इस कथन को यदि व्याख्यात किया जाए और इसमें निहित भाव का विस्तार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि विचारशील मनुष्यों में मत–सम्प्रदाय, राजनीति तथा आर्थिक प्रश्नों आदि को लेकर मत भिन्नता स्वाभाविक बात है किन्तु यदि इन्सान ठान ले तो एक मेज के इर्द–गिर्द बैठ कर वह अपने पारस्परिक मतभेदों को दूर कर सकता है। उस स्थिति में हिन्दू–मुसलमान, मुसलमान–यहूदी, पूंजीपति–मजदूर, काले–गोरे के पारस्परिक द्वन्द्वों के समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। अन्ततः दयानन्द प्रार्थना करते हैं– **"सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में (सर्वसम्मत होने में) प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।"** हम पंचायतों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक एकमत (आज की भाषा में सर्वसम्मत निर्णय) पर पहुँचने के लिए क्या सचेष्ट नहीं रहते ? दयानन्द के कथन का भी यही अभिप्राय है।

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में मनुष्य को सदा सत्य का पक्ष लेना चाहिए। बारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में स्वामीजी अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं कि सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद या लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो। **'वादे–वादे जायते तत्त्वबोधः'** के नीति–वाक्य की अनुगूँज दयानन्द के उक्त वाक्य में स्पष्ट सुनाई देती है। वह मनुष्य ही है जो परस्पर प्रेमयुक्त वाद या लेख के द्वारा अपना वैर विरोध दूर करता है, यदि उसमें

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

प्रथम रश्मि

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

सहृदयं साम्मनस्यं कृणोमि वः। – अथर्व. 3.30.1

मैं तुम्हें सहृदय युक्त, साम्मनस्य युक्त करता हूँ।

संक्षिप्त अन्वयार्थ – {अहम्} **(वः सहृदयं सामनस्यं कृणोमि)** मैं तुम सब को सहृदय और साम्मनस्य वाला बनाता हूँ।

परमपिता परमेश्वर गृहस्थ, परिवार, समाज, राष्ट्र वा संसार में रहने वाले हम मनुष्यों को सहृदय युक्त और साम्मनस्ययुक्त करना चाहता है। यही कारण है कि जिस की वजह से वह हमें वेद में यह उपदेश देता है कि हे घर–परिवार, समाज, राष्ट्र, देश वा संसार में रहने वाले मनुष्यो! मैं तुम सब को सहृदय वाला, साम्मनस्य वाला बनाना चाहता हूँ अर्थात् मैं चाहता हूँ कि तुम सब में परस्पर सहृदयता रहे, सामनस्य रहे क्योंकि सहृदयता और साम्मनस्य पूर्वक तुम रहोगे तो तभी तुम परस्पर सुख–शान्ति और आनन्द से अपना जीवन व्यतीत कर सकोगे।

परमेश्वर चाहता है कि घर–परिवार वा राष्ट्रादि में हम सब मनुष्यों में सहृदयता रहे, साम्मनस्य रहे। जैसा वह चाहता है वैसा ही वह वेद द्वारा उपदेश देता है और वैसा ही वह हम सब को भीतर से प्रेरणा भी करता है।

अब यह सहृदयता क्या है, साम्मनस्य क्या है ? सहृदयता है–समान हृदयता। यदि परिवार वा समाज में एक व्यक्ति दुःखी है, कष्ट में है वा सुखी है, प्रसन्न है तो उस व्यक्ति के दुःख में, कष्ट में अगर दूसरा व्यक्ति भी दुःखी है, कष्ट में है या उस व्यक्ति के सुख में दूसरा व्यक्ति भी सुखी है, प्रसन्न है, तो इसी का नाम सहृदयता है।

सचमुच ऐसी सहृदयता जब घर–परिवार, समाज वा राष्ट्र आदि में घर कर जाती है तो फिर दुःखियों का दुःख हलका हो जाता है, उनका दुःख घर–परिवार वा समाज के सदस्यों की हार्दिक सहानुभूति से फिर भारी नहीं रहता। अगर घर–परिवार का एक सदस्य प्रसन्न हो जाता है, तो अन्य भी उसकी प्रसन्नता में प्रसन्नता अनुभव करते हैं, उस की खुशी में फूले नहीं समाते। इस सहृदयता के कारण वे सब परस्पर घनिष्टता पूर्वक जुड़े रहते हैं। जैसे किसी की चोरी हो जाती है, किसी का कुछ गुम हो जाता है, कुछ खो जाता है, कुछ नुकसान हो जाता है, किसी को चोट लग जाती है, किसी को बुखार हो जाता है, किसी के पेट में पीड़ा हो जाती है, या किसी को कोई रोग–कष्ट, आपत्ति–विपत्ति आ घेरती है, तो तब वह हैरान–परेशान हो जाता है, और कई बार वह इतना दुःखी हो जाता है कि सबके सम्मुख अपने आप को वह हीन समझने लगता है। सब परिवार के लोग भी सेवा कर–कर के परेशान हो जाते हैं, तब उसको देखने के लिए अपनी एक बड़ी बहिन आती है। भाई की दीन–हीन दशा को देखकर उसके दुःख में दुःखी होकर उसके हृदय में स्नेह–सहानुभूति का स्रोत बहने लगता है। उसके उन स्नेह सहानुभूति और प्यार भरे शब्दों से उसको जो सांत्वना मिलती है, इसका उसके स्वास्थ्य और मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब बहिन ने अपने घर वापिस जाने का नाम लिया तो उस भाई का दिल भर आया। तब उसकी पत्नी ने उस बहिन जी से कहा कि– "देखो बहिन जी, जब से आप आई हैं और इन के समीप बैठती– उठती वा बातचीत करती हैं, तो इनको अपना दुःख भूला–सा रहता है। समय पर नींद भी आती है और ये ऐसा अनुभव करते हैं कि जैसे इनका दुःख आधा रह गया हो। आप कुछ समय और ठहर जाएँ तो हमें यह विश्वास है कि ये बहुत जल्दी ठीक हो जाएँगे।"

सचमुच बहिन उसके दुःख में दुःखी होकर स्नेह–प्रेम और सहानुभूति से जब उन्हें दवा देती थी और कहती थी कि– "भइया, मुझे विश्वास है कि इस दवा से तुम्हें जल्दी ही आराम आ जाएगा।" तो सचमुच उस दवा में उसकी दुआ भी मिलकर भाई पर जादू का–सा असर करती थी। अन्त में वह ठीक– ठाक हो गया। पर अपनी बहिन की उस सहृदयता प्रेम– सहानुभूति के लिए आज भी वह बड़ी कृतज्ञता अनुभव करता है।

एक बेटी स्कूल में पढ़ती है, उसने क्या देखा कि उसकी क्लास की एक लड़की के पास पुस्तक नहीं है। उसको अपनी अध्यापिका भी बहुत डाँटती है पर गरीबी के कारण चाहती हुई भी वह पुस्तक खरीद नहीं पाती। उसकी इस स्थिति को उसकी क्लास की एक बच्ची भाँप गई और उसने अपने पिता से कहा–"पिताजी, हमारी कक्षा में एक लड़की है जो बहुत योग्य है, पर गरीब बहुत है। पुस्तक आदि खरीद नहीं सकती और उसके अभाव में वह बड़ी दुःखी रहती है। पिताजी, क्या आप उसे वह पुस्तक ला देंगे ?" बेटी वह पुस्तक कितने की आती है ? बेटी बोली, "पिताजी! 6 रुपए 50 पैसे की। पिताजी बोले, यह लो बेटी 6 रुपए 50 पैसे। उसे यह पुस्तक लेकर दे देना।" उस बेटी ने उसको वह पुस्तक लेकर देदी। इस पर वह बच्ची बड़ी प्रसन्न हुई और रोम–रोम से उस लड़की के प्रति कृतज्ञता अनुभव की और धन्यवाद भी दिया।

राम के सम्मुख जब सुग्रीव ने अपनी व्यथा सुनाई तो राम सहृदयता के वशीभूत होकर उसके दुःख को अपना दुःख अनुभव करने लगे। इसी सहृदयता के कारण राम ने बाली को मार कर सुग्रीव को उनकी पत्नी और राज्य दिलाया।

कन्या गुरुकुल नरेला में एक बेटी को जब पता लगा कि मेरी क्लास की एक कन्या सतत पढ़ना चाहती है। पर उसका पिता उसका खर्च आदि वहन नहीं कर सकता। अपनी सखी के इस दुःख को जानकर उससे रहा नहीं गया, तो उसने अपने पिता से यह सब कुछ सुनाया और कहा कि– "पिताजी! क्या आप मेरी तरह उसको अपनी बेटी मान कर उसका खर्च वहन कर सकेंगे ?" बेटी की, सहेली के प्रति उस सहृदयता, स्नेह एवं सहानुभूति पूर्ण बात को सुनकर उसके पिता ने झट कह दिया "बेटी! सचमुच यदि उसकी यह स्थिति है तो मैं आगे से जो भी खर्चा तेरे लिए भेजूँगा, वही तेरी सहेली के लिए भी भेज दिया करुँगा।" इसके बाद वर्षों तक वह सज्जन अपनी पुत्री के साथ–साथ उसका भी व्यय भेजता रहा।

सहृदयता वस्तुतः वह चीज है जो मनुष्य को दूसरे के दुःख में दुःखी, दूसरे के कष्ट में कष्टमय, दूसरे के अभाव में अभावमय बना देती हैं। इसके परिणामस्वरूप फिर मनुष्य में उस व्यक्ति के प्रति स्नेह–सहानुभूति उत्पन्न होती है। फिर जैसे वह अपने दुःख को दूर करने का प्रयास करता है वैसे ही वह दूसरे के दुःख को भी दूर करने का प्रयास करता है, जैसे वह अपने कष्ट–क्लेश से अपने को मुक्त करने का प्रयास करता है, वैसे ही वह दूसरे के कष्ट व क्लेश को भी अपना कष्ट– क्लेश मानकर उस से उसको मुक्त करने का प्रयास करता है, जैसे वह अपने अभाव को दूर करने के लिए दौड़–धूप करता है, वैसे ही वह दूसरे के अभाव को भी दूर करने के लिए पुरुषार्थ करता है।

जिस घर में, जिस परिवार में, जिस समाज में परस्पर सहृदयता वर्त्तमान रहती है, वहाँ फिर दूसरों को प्रसन्न देखकर, दूसरों को उन्नत – समुन्नत देखकर, दूसरों को धन–वैभव से बढ़ता हुआ देखकर, दूसरों को सुप्रतिष्ठित देखकर, दूसरों को हरा–भरा देखकर, मनुष्यों में ईर्ष्या, द्वेष, जलन, कुढ़न आदि नहीं होती वरन् वे तो जब उन्हें बढ़ता हुआ, समुन्नत होता हुआ, धन–वैभव से सम्पन्न होता हुआ, हरा–भरा, नाचता–गाता हुआ, देखते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे वे स्वयं ही बढ़ रहे हों, जैसे वे स्वयं ही उन्नत – समुन्नत हो रहे हों, जैसे वे स्वयं ही धन–वैभव से सम्पन्न हो रहे हों, हर प्रकार से हरे–भरे हो रहे हों। तभी तो वे उनकी खुशी को अपनी खुशी मानकर नाचते–गाते और खुश होते रहते हैं।

सच कहा जाए तो सहृदयता घर–परिवार, समाज का वह गुण है कि जिस से घर–परिवार, समाज में वर्त्तमान रहने पर कितना भी कोई यत्न क्यों न करे, उस घर–परिवार, समाज के सदस्यों को आपस में पृथक् नहीं कर सकता। पर अगर घर–परिवार और समाज में यह सहृदयता न रहे तो फिर कोई उनको परस्पर जोड़ भी नहीं सकता। इसी के कारण ही तो मनुष्यों में, परस्पर स्नेह–सहानुभूति उत्पन्न होती है और फिर वे एक–दूसरे के काम आते हैं, एक–दूसरे का सहयोग करते हैं। यह परस्पर का स्नेह–प्रेम ही उन्हें एक–दूसरे से जोड़ कर रखता है, एक–दूसरे से आबद्ध किए रखता है। यही उपर्युक्त वेद–मन्त्र का आशय है, और यही प्यारे प्रभु का अभिप्राय है।

केवल यह नहीं कि प्रभु केवल हममें सहृदयता ही भरना चाहता है, वह तो इससे आगे बढ़कर हम में साम्मनस्य भी भरना चाहता है, समान मनस्कता भी भरना चाहता है ताकि हमारे घर–परिवार और समाज में परस्पर एक–दूसरे के प्रति किया हुआ चिन्तन ज्ञान पूर्वक हो, बुद्धिपूर्वक हो, विवेकपूर्वक हो।

इस प्रकार प्रभु प्रदत्त वेदोपदेश द्वारा वा प्रभु प्यारे की भीतर से दी हुई प्रेरणा के द्वारा जब हमारे हृदय में दूसरों के प्रति सहृदयता होगी तो फिर हम में उनके लिए साम्मनस्य–समान मनस्कता भी होगी अर्थात् हम दूसरों के लिए सम्यक् प्रकार से सोच सकेंगे–ठीक प्रकार से विचार कर सकेंगे। अब जब हम वा दूसरे सहृदयता के कारण जब परस्पर एक–दूसरे के प्रति सम्यक प्रकार से ठीक प्रकार से या एकत्व की भावना से ज्ञानपूर्वक विवेकपूर्वक सोच–विचार सकेंगे तो फिर निःसन्देह वे एक–दूसरे के प्रति अच्छे से अच्छा, बढ़िया से बढ़िया, उत्तम से उत्तम व्यवहार भी कर सकेंगे। ***क्रमशः***

मानव सेवा : ईश्वर की सच्ची उपासना

● डॉ. अमित शर्मा

भारतीय चिंतन परम्परा में सेवा केवल एक सामाजिक कर्त्तव्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का उच्चतम रूप मानी गई है। हमारे ऋषियों ने जीवन को दो मुख्य धाराओं – 'आत्मकल्याण' और 'परहित' में विभक्त किया। जहाँ आत्मकल्याण, योग, ध्यान और आत्मचिंतन से होता है, वहीं परहित सेवा और करुणा के मार्ग से। यह सेवा भाव ही भारतीय संस्कृति का हृदय है, जिसे **'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** जैसी भावनाओं ने सींचा है।

सेवा की आध्यात्मिक परिभाषा–

प्रत्येक धर्मग्रंथ – चाहे वह वेद हो, उपनिषद हो, गीता हो या रामायण – 'सेवा' को साधना से ऊँचा स्थान देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।
(भगवद्गीता 12.13)

यह श्लोक दर्शाता है कि एक सच्चा भक्त वह है जो सब जीवों के प्रति द्वेष रहित, मित्रवत्, और करुणामय होता है। करुणा और सेवा, केवल आचरण नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति में अहंकार और स्वार्थ का लोप हो जाता है।

''परोपकाराय सतां विभूतयः।''

अर्थात् सज्जनों की समस्त संपत्ति परोपकार के लिए होती है, न कि केवल व्यक्तिगत भोग के लिए।

सेवा का धर्म और दर्शन–

सेवा का अर्थ केवल भौतिक सहायता नहीं है बल्कि यह मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आत्मिक सहारा भी है। कोई भूखा है तो उसे अन्न देना सेवा है, कोई दुखी है तो उसे धैर्य बँधाना सेवा है, और कोई मार्गहीन है तो उसे दिशा दिखाना सेवा है।

रामचरितमानस में भी तुलसीदास जी लिखते हैं–

''सब ते सेवक धर्म कठोरा।''

इस पंक्ति का आशय है कि सेवा धर्म सरल नहीं, लेकिन श्रेष्ठतम है। इसमें आत्मत्याग, विनम्रता और सहनशीलता की आवश्यकता होती है।

स्वामी विवेकानंद ने भी यही उद्घोष किया था–

''जिन गरीबों, पीड़ितों और असहायों में तुम ईश्वर को नहीं देख सकते, उनकी सेवा नहीं कर सकते, वहाँ मंदिर की मूर्ति पूजना व्यर्थ है।''

सेवा बहुआयामी होती है –

* कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से शिक्षा देकर सेवा कर सकता है।

* कोई अपने समय से वृद्धाश्रम या अनाथालय में सहयोग देकर।

* कोई धन से सहायता कर सकता है।

* और कोई केवल सहानुभूति और प्रेम देकर भी सेवा कर सकता है।

ऋग्वेद में कहा गया है –

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।'' (ऋग्वेद 10.191.3)

यह मंत्र एक समवेत समाज की कल्पना करता है जहाँ सभी मिलकर चलते हैं, सोचते हैं और कार्य करते हैं। यह सामूहिकता, सहयोग और सेवा के बिना सम्भव नहीं।

आधुनिक युग में सेवा की प्रासंगिकता –

आज जब भौतिकता, प्रतिस्पर्धा और आत्मकेंद्रित जीवनशैली ने मानवीय संबंधों को खोखला कर दिया है, सेवा का यह भाव और अधिक आवश्यक हो गया है। आर्थिक असमानता, मानसिक तनाव, वृद्धावस्था की उपेक्षा, बाल श्रम, और नारी शोषण जैसी समस्याएँ तब तक बनी रहेंगी जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सेवा की चेतना जागृत न हो।

कोरोना काल इसका ज्वलंत उदाहरण रहा – जब मानव सेवा ने ही लाखों जीवन बचाए, चाहे वह स्वास्थ्यकर्मियों की निःस्वार्थ सेवा हो, या सामान्य नागरिकों का भोजन वितरण।

निष्कर्षत : सेवा ही साधना है। "स्वयं को जानो और परहित के लिए कार्य करो।" यही जीवन का सार है। सेवा के बिना धर्म अपूर्ण है और सेवा के बिना मोक्ष भी अधूरा है। कालिदास भी लिखते हैं कि– मनुष्य शरीर सेवा और धर्म की सिद्धि का उपकरण है।

अतः आइए, हम संकल्प लें

हम हर प्राणी में ईश्वर का अंश देखकर उसे करुणा और सम्मान देंगे।

हम अपने समय, शक्ति और साधनों का अंश मानवता के लिए समर्पित करेंगे।

और जीवन में इस शाश्वत सत्य को आत्मसात करेंगे –

"मानव सेवा ही ईश्वर की सच्ची उपासना है।"

सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
डी.ए.वी. शताब्दी महाविद्यालय,
फरीदाबाद

☞ पृष्ठ 07 का शेष

ऋषि दयानन्द के ...

मात्र पशुता होती तो एक हड्डी के लिए लहूलुहान कर देने तथा हो जानेवाले दो कुत्तों की भाँति वह स्वयं को नष्ट कर देता। तथापि मनुष्य सर्वगुण सम्पन्न भी नहीं है। स्वामीजी की सम्मति में बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में वे अति तत्पर रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं है क्योंकि प्रथम अपने दोष निकाले पश्चात् दूसरों के दोषों की ओर दृष्टिपात करे। हमारे विचार से मनुष्यता की इससे अधिक उपयुक्त परिभाषा और क्या हो सकती है ?

ऋषि दयानन्द को मनुष्य की क्षमता में विश्वास था। वे मनुष्य की सत्यासत्य का विवेक करने में सक्षम बुद्धि, न्याय और अन्याय के पार्थक्य को समझने की शक्ति तथा धर्माधर्म एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने की योग्यता के कायल थे। तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में वे लिखते हैं– "मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है (जो पढ़ा या सुना है) उतना निश्चय कर सकता है।" इस तथ्य के आधार पर वे मानते हैं विभिन्न मत– सम्प्रदायों के अनुयायियों को एक दूसरे के विचारों और मान्यताओं से परिचित होना चाहिए। परस्पर संवाद या विचार विमर्श तभी सम्भव है जब हम एक दूसरे के विचारों का पहले से ज्ञान रखें। उनकी मान्यता थी कि सत्य को लेकर मानवसमाज का एकमत होना असम्भव नहीं है।" जो–जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं, वे तो सब में एक से हैं। झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठ हो तो भी कुछ थोड़ा–सा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिए वाद–प्रतिवाद करें तो अवश्य सत्य का निश्चय हो जाए" दयानन्द की दृष्टि में मानव की यह मूलभूत एकता ही सर्वतन्त्र सिद्धान्त है जिसे वे 'सामान्य सार्वजनिक धर्म' कहते हैं।

लेखक की पुस्तक
'ऋषि दयानन्द सिद्धान्त और जीवन दर्शन' से साभार

वायुयान का अग्निस्नान

दो सौ इकसठ चल दिए, अग्निस्नान कर साथ।
कह सुन कुछ पाए नहीं, पकड़ न पाए हाथ।

पलक झपकते हो गये, प्राणवान निष्प्राण।
एक बचा है अचकचा, वो भी है म्रियमाण।

गोला उठ कर आग का, हुआ आग सब आग।
पल भर में सब राख था, लोग न पाए भाग।

क्षण भंगुर यह सांस है, कुछ भी बचे न शेष।
अहंकार भर–मानते, हम हैं बहुत विशेष।

वायुयान जलयान का, कौन भरोसा मीत।
उड़नपरी या जलपरी, किसका अन्तिम गीत।

होनी के आगे खड़ा, हाथ बांध कल आज।
सुख चिड़िया असहाय सी, दुःख झपटता बाज।

स्वप्नलोक, यमलोक में झीनी एक दरार।
अगले क्षण का क्या पता, छोड़ो हर तकरार।

चले अहमदाबाद से, लन्दन को इन्सान।
वायुयान में सब जले, हे मेरे भगवान।

श्रद्धांजलियाँ अश्रु से, नयन हुए आरक्त।
धैर्य स्थैर्य दो प्रभु हमें, हम सन्तान अशक्त।

सारस्वत मोहन 'मनीषी'
ए–13–14 सेक्टर–11, रोहिणी दिल्ली – 110085
फोन नं.– 011–27572897

पत्र/कविता

देव दयानन्द के गुण गाओ

हे आर्य कुमारो! अब तो जाओ जाग।
देव दयानन्द के गुण गाओ, कलह फूट दो त्याग।।
जगद्गुरु ऋषि दयानन्द जी, ईश्वर भक्त निराले थे।
योगी, तपधारी, बह्मचारी, देशभक्त मतवाले थे।।
वेद भक्त, गौ भक्त, साहसी, त्यागी, परोपकारी थे।
मानवता के पुंज संत थे, महावीर बलधारी थे।
वेद विरोधी लगा सके ना, अब तक उनपर दाग।
हे आर्य कुमारो! अब तो जाओ जाग।। 1।।

अंग्रेज़ों का राज्य यहाँ था, पाप विधर्मी करते थे।
गऊओं की हत्या करते थे, ईश्वर से ना डरते थे।।
देशभक्त भारतवासी, दिन–रात सताए जाते थे।
रामकृष्ण के वंशज तब, फाँसी चढ़वाए जाते थे।।
जुल्म देख दुष्टों के, ऋषि के दिल में भड़की आग।
हे आर्यकुमारो ! अब तो जाओ जाग।। 2।।

दुर्गति देख देश भारत की, जोश सन्त को आया था।
अंग्रेज़ों ! भारत से भागो, ऋषिवर ने फरमाया था।।
वेदों का संदेश देश की, जनता को समझाया था।
जाति–पाति है वेद विरोधी, सुख का मार्ग बताया था।।
साफ कहा था यवन, ईसाई, हैं सब काले नाग।
हे आर्य कुमारो ! अब तो जाओ जाग।। 3।।

श्रद्धानन्द, लाजपत, बिस्मिल ऋषि के सच्चे चेले थे।
लेखराम अरु राजपाल, शौनित की होली खेले थे।।
मदनलाल, करतार, भगत सिंह, भारत के दीवाने थे।
पंडित बालमुकंद, चन्द्रशेखर, योद्धा मस्ताने थे।।
इन वीरों ने आज़ादी का गाया प्यारा राग।
हे आर्य कुमारो! अब तो जाओ जाग।। 4।।

वीरों के बलिदानों से ही, मिली हमें यह आज़ादी।
धूर्त–स्वार्थी, नेता बनकर आज रहे कर बर्बादी।।
वेद विरोधी पाखंडी, पाखंड रात दिन बढ़ा रहे।
भूल गए ईश्वर को ढोंगी, गुंडों को सिर चढ़ा रहे।
आस्तीन में छिप कर बैठे, विषधर काले नाग।
हे आर्य कुमारो! अब तो जाओ जाग।। 5।।

वीरों की कुर्बानी को अब, देश–द्रोही भूल गए।
सुरा–सुंदरी के दीवाने, दौलत पाकर फूल गए।।
उठो आर्यो ! अंगड़ाई लो, अपना जोश दिखाओ तुम।
देश भक्त बलवान बनो अब, मिटता देश बचाओ तुम।।
नन्दलाल कहे तुम्हें देख, पापी जाएंगे भाग।
हे आर्य कुमारो! अब तो जाओ जाग।। 6।।

पंडित नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल हरियाणा
चल भाष :– 9813845774, 9053252682

उधम सिंह

उधम सिंह का जन्म 26 दिसंबर, 1899 को पंजाब में संगपुर जिले के सुनाम गाँव में हुआ था। उनके पिता रेलवे चौकीदार थे। उधमसिंह के बचपन का नाम शेर सिंह था। छोटी उम्र में माता–पिता के निधन के बाद उन्हें अपने बड़े भाई के साथ अमृतसर के अनाथालय में शरण लेनी पड़ी, जहाँ अनाथालय में ही उनके बड़े भाई की मृत्यु होने के दो साल बाद उन्होंने मैट्रिक पास किया, फिर 1919 में अनाथालय से निकलकर वे क्रान्तिकारी अभियान में शामिल हो गए। उसी साल अमृतसर के जलियांवाला बाग में अंग्रेज़ों ने खून की होली खेली थी। उधम सिंह ब्रिट्रिशों की नृशंसता की उस घटना के न केवल प्रत्यक्षदर्शी थे, बल्कि उस हादसे ने उनके जीवन पर भी बड़ा प्रभाव डाला। जलियांवाला बाग की मिट्टी हाथ में लेकर उन्होंने जनरल डायर और पंजाब के तत्कालीन गवर्नर माइकल ओ ड्वायर को सबक सिखाने की शपथ ली। भगतसिंह को उधम सिंह अपना गुरु मानते थे। डायर और ओ ड्वायर को खत्म कर देने का यह लक्ष्य पूरा करने के लिए क्रांतिकारियों से चंदा इकट्ठा कर उधम सिंह भारत से निकल गए। उन्होंने अफ्रीका, नैरोबी, ब्राजील और अमेरिका की यात्रा की और वहाँ गदर पार्टी में शामिल हो गए। वर्ष 1934 में वे ब्रिटेन पहुँचे। लेकिन जनरल डायर की ब्रेन हेमरेज से 1927 में ही मौत हो गई थी अतः उधमसिंह के निशाने पर अब सिर्फ ओ 'ड्वायर थे। उन्होंने यात्रा के उद्देश्य से एक कार और रिवॉल्वर खरीदी। जलियांवाला बाग के 21 साल बाद 13 मार्च, 1940 को रॉयल सेंट्रल एशियन सोसाइटी की लंदन के कॉक्सटन हॉल में एक बैठक थी। वहाँ ओ ड्वायर भी वक्ताओं में शामिल थे। उधमसिंह ने एक किताब ली और उसके बीच का हिस्सा रिवॉल्वर के आकार के अनुपात में काट दिया और रिवॉल्वर को उसमें छिपाकर रखा, फिर समय पर बैठक स्थल में पहुँच गए। बैठक खत्म होने के बाद दीवार के पीछे से मोर्चा सँभालते हुए उधमसिंह ने ओ ड्वायर पर गोलियाँ दाग दीं। ओ ड्वायर को दो गोलियाँ लगी और तुरंत ही उनकी मौत हो गई। उधम सिंह ने भागने की कोशिश नहीं की और वहीं अपनी गिरफ्तारी दी। उन पर मुकदमा चला। अदालत में जज ने उनसे पूछा कि माइकल ओ ड्वायर के दोस्तों पर उन्होंने गोलियाँ क्यों नही चलाई ? उधमसिंह का जवाब था, वहाँ कई औरतें मौजूद थीं और हमारी संस्कृति में औरतों पर हमला करना पाप है। उधम सिंह की इस बहादुरी की काफी तारीफ हुई। जवाहरलाल नेहरु का कहना था कि माइकल ओ ड्वायर की हत्या का उन्हें अफसोस तो है, लेकिन यह आवश्यक भी था। चार जून, 1940 को उधम सिंह को हत्या का दोषी ठहराया गया, और 31 जुलाई, 1940 को पेंटनविले जेल में उन्हें फाँसी दे दी गई। वर्ष 1974 में ब्रिटेन ने उधम सिंह के अवशेष भारत को सौंप दिए। उत्तराखंड के एक जिले का नाम उनके नाम पर उधम सिंह नगर रखा गया है। उनके जीवन पर सरदार उधम सिंह नाम से एक फिल्म भी बनी है।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

नेहरू और शास्त्री की आत्मीयता

पं. जवाहर लाल नेहरु और लाल बहादुर शास्त्री में गहन विश्वास था। एक दिवस नेहरु जी शास्त्री जी को गृहमंत्री के नाते कश्मीर में फैल रहे साम्प्रदायिक झगड़ों के विवाद को सामान्य बनाने को कहा।

शास्त्री जी ने नेहरु जी के आदेश को मानते हुए तुरंत कश्मीर जाने को तैयार हो गए। अचानक नेहरु जी को शास्त्री जी की वेशभूषा देखकर याद आया कि कश्मीर में ठंड का प्रकोप ज्यादा होगा उसके लिए शास्त्री जी के पास सम्भवतः वेशभूषा का अभाव हो सकता है ? उन्होंने तुरन्त अपने ड्राइवर से कहा कि शास्त्री जी को यह गर्म कोट देकर आओ। शास्त्री जी इस कोट को देखकर नेहरु जी के आगे नत मस्तक हो गए क्योंकि वह नेहरु जी का सबसे उत्तम कोट था। ऐसी थी नेहरु जी और शास्त्री जी की आत्मीयता।

शास्त्री जी ने कश्मीर में जाकर आत्मीयता और विद्वता से उस साम्प्रदायिक विवाद को आसानी से हल कर दिया। बगैर किसी प्रशासनिक दबाव के।

कृष्ण मोहन गोयल
113–बाजार कोट–अमरोहा–244221
मों. 9927064101

****

आर्यसमाज धामावाला, देहरादून का रविवारीय सत्संग

आर्यसमाज धामावाला में प्रधान श्री सुधीर गुलाटी जी के ब्रह्मत्व में देवयज्ञ से साप्ताहिक सत्संग आरम्भ हुआ। यज्ञोपरान्त सात वर्षीया बलिका अदिति ने आर्यसमाज के नियमों का वाचन करके सभी को मन्त्र मुग्ध कर दिया। माता जगवती चौधरी व श्री शिव दयाल जी ने ईश भक्ति व समाज सुधारक भजनों का मधुर गायन किया।

आर्ष वानप्रथाश्रम ज्वालापुर के आर्य विद्वान् श्री शैलेश मुनि सत्यार्थी जी का सारगर्थित भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि हमें प्राकृतिक आपदाओं का गम्भीरता व सहनशीलता से सामना करना चाहिए। अहमदाबाद में वायुयान

दुर्घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि इस प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं पर सभी को धैर्य रखकर समाधान सोचना चाहिए। नशाखोरी, मांसाहार आदि से समाज को बचाने के प्रयास करने चाहिए। पंच महायज्ञों को सभी ने प्रतिदिन करने चाहिए।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर द्वारा किए गए समाज सुधार के प्रसंग सुनाकर सभी को उच्च कर्मों में प्रेरित होने के लिए प्रोत्साहित किया।

अन्त में प्रधान जी ने सभी भजनोपदेशकों, आगन्तुकों व सत्यार्थी जी का हृदय से धन्यवाद किया। अहमदाबाद वायुयान में दुर्घटना में मृतक जनों को श्रद्धांजलि दी गई। अवशिष्ट परिवार जनों को इस दारुण दुःख को सहने की परमात्मा से प्रार्थना की गई। शांति पाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

डी.ए.वी. शोघी में जनजागरण क्रार्यक्रम

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, शोघी (शिमला) द्वारा विश्व पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य में एक भव्य एवं प्रेरणादायक जनजागरण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों एवं आमजन में पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना जागृत करना था।

विद्यालय परिसर में विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया गया, जिनमें नाटक, भाषण, नृत्य, लेखन, प्रमुख रहे। विद्यार्थियों ने पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं एवं उनके समाधान पर अपने विचार प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किए।

प्रधानाचार्य महोदय ने अपने

संबोधन में पर्यावरण संरक्षण की महत्ता पर प्रकाश डालते विद्यार्थियों को दैनिक जीवन में प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा दी।

कार्यक्रम का समापन 'पर्यावरण बचाओ – जीवन बचाओ' के संकल्प के साथ किया गया। यह दिन विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ विद्यालय के प्रधानाचार्य श्रीमान 'लखबीर सिंह द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। विद्यालय प्रांगण से एक जनजागरूकता रैली निकाली गई, जिसमें विद्यार्थियों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। रैली में बच्चों ने हाथों में पर्यावरण संरक्षण संबंधी स्लोगन लेकर आम जनता को जागरूक करने का कार्य किया।

डी.ए.वी. जमथल समाज-सेवा के पथ पर

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, जमथल (बिलासपुर) में पर्यावरण के प्रति जागरूकता फैलाने हेतु विभिन्न रचनात्मक गतिविधियों का आयोजन किया गया। इन गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों, अभिभावकों एवं समाज में पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता और जिम्मेदारी की भावना का विकास करना था।

विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर छोटे बच्चों ने बेकार सामग्री जैसे प्लास्टिक थैले, अखबार, गत्ते, पैकेट बंद खाद्य पदार्थों की प्लास्टिक आदि का उपयोग कर सुंदर एवं उपयोगी रचनात्मक वस्तुएं तैयार कीं। इस गतिविधि में बच्चों के अभिभावकों को भी आमंत्रित किया गया, जिससे पर्यावरण के प्रति जागरूकता का संदेश समाज के हर वर्ग तक पहुंचे।

विद्यालय द्वारा 'एक पेड़ माँ के नाम' नामक विशेष अभियान चलाया गया, जिसमें बच्चों ने अपनी माताओं के साथ मिलकर पौधरोपण किया। यह अभियान माँ और बच्चे के अटूट संबंध को प्रकृति से जोड़ने का एक अनूठा प्रयास था। बच्चों ने अपनी माताओं के साथ मिलकर पौधों की देखभाल का संकल्प भी लिया।

स्वच्छता सप्ताह के उपलक्ष्य में डीएवी जमथल के विद्यार्थियों ने एक प्रभावशाली स्वच्छता रैली निकाली। यह रैली एनटीपीसी परिसर में आयोजित की गई जिसमें विद्यार्थियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। रैली के दौरान बच्चों ने उत्साहपूर्वक पर्यावरण संरक्षण और स्वच्छता के महत्व को उजागर करने वाले जोरदार नारे लगाए।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

डी.ए.वी. कटराईं (कुल्लू) में मासिक यज्ञ सम्पन्न

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कटराईं जिला कुल्लू के छोटे से कस्बे में स्थित है। विद्यालय ने आर्यसमाज से संबंधित गतिविधियों से विद्यालय के वातावरण को गरिमामय बनाया है।

विद्यालय परिसर में विद्यार्थियों के विशेष समारोहों के अतरिक्त मास के प्रथम सप्ताह में हवन किया जाता है। छात्रों के जन्मदिन पर भी विशेष हवन का आयोजन कर शुभकामनाएँ दी जाती है।

प्रधानाचार्या श्रीमती चंद्रिका मल्होत्रा ने बताया कि मासिक हवन का उद्देश्य बच्चों में संस्कार और नैतिकता के मूल्यों को बढ़ावा देना है। हाल ही में डीएवी प्रबन्धक के वरिष्ठ उपप्रधान न्यायमूर्ति प्रीतमपाल जी यज्ञ के मुख्य यजमान बने। इसके साथ प्रिंसिपल के.एस. गुलेरिया ने भी यज्ञ में

आहुतियाँ दीं।

इस अवसर पर वृक्षारोपण भी किया गया। मुख्य यजमान न्यायमूर्ति प्रीतमपाल जी ने विद्यालय के सफल भविष्य की कामना की।

डी.ए.वी. मनाली में विश्व पर्यावरण दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल मनाली में विश्व पर्यावरण दिवस उत्साहपूर्वक और जागरूकता के साथ मनाया गया। प्रातः कालीन सभा की शुरुआत छात्रों द्वारा प्रभावशाली भाषण और सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी तथा कविता पाठ से हुई, जो पूरी तरह इस वर्ष के थीम "प्लास्टिक प्रदूषण को हराएं" पर आधारित थी।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में एसडीएम मनाली श्री रमन शर्मा जी उपस्थित रहे।

प्रधानाचार्या अनीता वर्मा ने कहा, "यदि हमने अभी भी प्रकृति की रक्षा के लिए ठोस कदम नहीं उठाए, तो हमारा भविष्य खतरे में है।" छात्रों द्वारा डीएवी पब्लिक स्कूल मनाली से मॉल रोड पर एक जागरूकता रैली निकाली गई। छात्रों ने नारों, पोस्टरों और स्थानीय लोगों के साथ संवाद के माध्यम से प्लास्टिक उपयोग को कम करने का संदेश दिया।

इको क्लब के छात्रों ने "प्लास्टिक प्रदूषण को हराएं" विषय पर एक प्रेरणादायक नुक्कड़ नाटक मनाली माल रोड पर प्रस्तुत किया गया, जिसमें संस्कृति और प्रकृति के बीच के संबंध को प्रभावी ढंग से दर्शाया गया। एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ, जिसमें छात्रों ने अपनी रचनात्मकता से पर्यावरण के प्रति जिम्मेवारी व्यक्त की। कार्यक्रम में संत निरंकारी सभा का सहयोग रहा।

कार्यक्रम का समापन सभी उपस्थित लोगों द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु संकल्प लेने के साथ किया गया।

डी.ए.वी. खारघर (नवीं मुम्बई) ने मनाया डी.ए.वी. स्थापना दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल खारघर, नवीं मुम्बई के प्रांगण में डी.ए.वी. स्थापना दिवस हर्षोल्लास से मनाया गया। इस आयोजन का आरम्भ विशेष यज्ञ से हुआ। आचमन मंत्रों द्वारा यज्ञ का आरंभ कर बृहद्यज्ञ के मन्त्रों एवं ऋग्वेदशतकं के मन्त्रों द्वारा शिक्षकों ने आहुति प्रदान की इस अवसर पर यज्ञ में समस्त शिक्षकों ने सहभागिता ग्रहण की।

प्रधानाचार्या महोदया श्रीमती सीमा मैंदीरत्ताने इस अवसर पर शिक्षक वर्ग को सम्बोधित करते हुए यह कहा कि शिक्षक समाज के हित के लिये कर्म करते हुए जीवन यापन करता है, शिक्षक ब्रह्मदान रूपी सर्वोत्तम कार्य परहित की भावना को ध्यान में रखते हुए करता है। उत्तम समाज व उत्तम राष्ट्र का निर्माण तब तक ही होता है जब तक कि शिक्षक उन्हें पुत्रवत् अनुशासन एवं विद्या दोनों का अधिगम करवायें –

अन्नदानं परं दानं विद्यादानमतः परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिः यावज्जीवं तु विद्यया।

इस प्रकार अत्यन्त प्रेरणा तथा उत्साह के साथ नव सत्र का आरम्भ हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**